दिव्य जीवन

श्री 108 बाबा श्री रामरतनदास जी महाराज

स्थान—करह
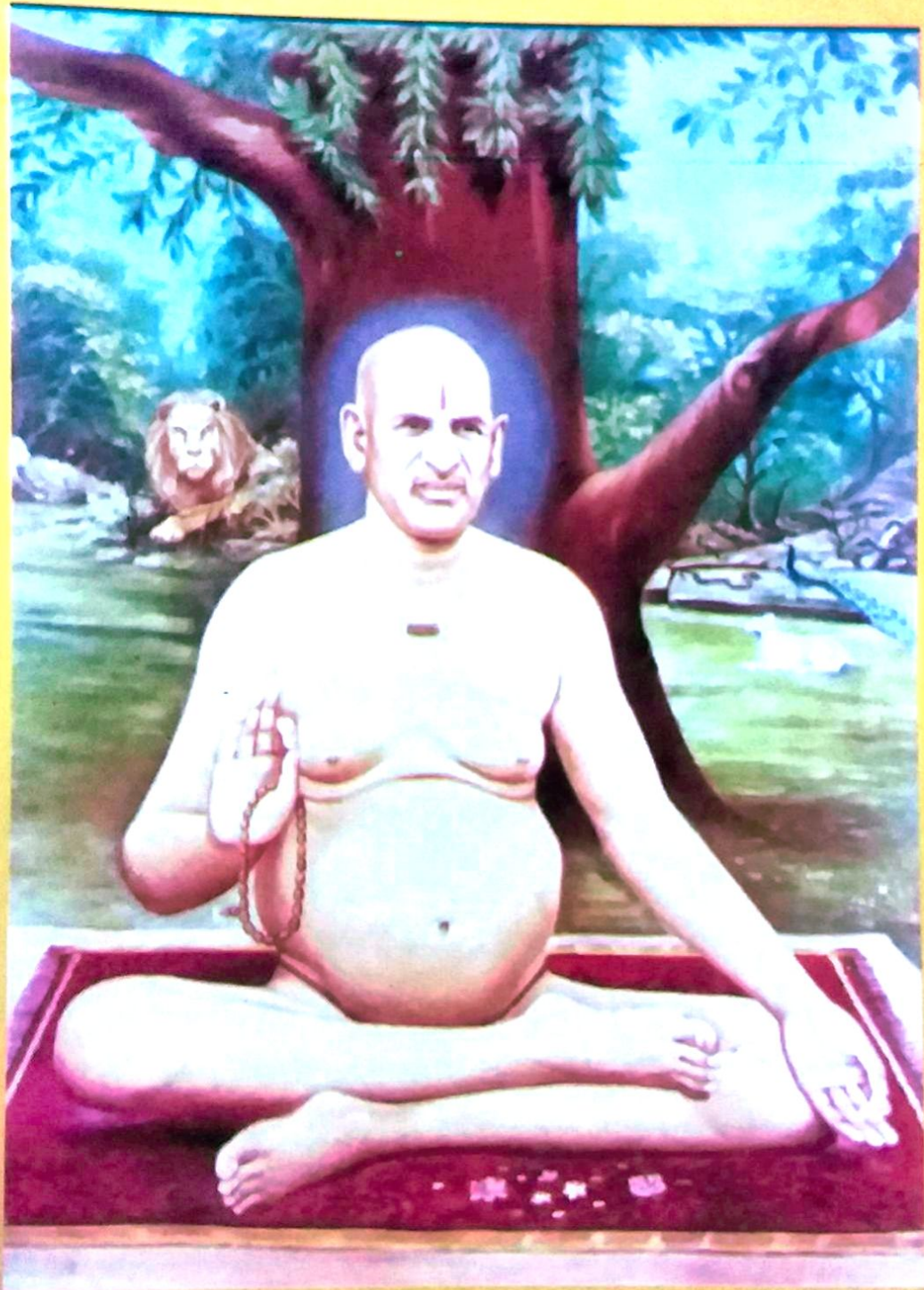
श्री पूज्य बड़े बाबा रामरतनदास जी महाराज

सीताराम
श्री पूज्य बाबा रामरतनदास जी महाराज

॥ श्री रामचन्द्रायनमः ॥

अनन्त श्री विभूषित

श्री श्री १०८

श्री रामरतनदास जी महाराज

(करह वाले बाबा)

का

दिव्य जीवन

:: लेखक ::

श्रीरामजी शास्त्री
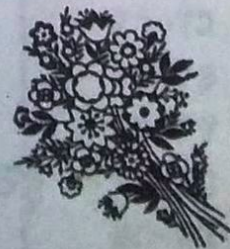
:: प्रकाशक ::

साकेतवासी

अनन्त श्री बाबा रामदासजी महाराज

(छोटे बाबा करह)

:: संस्करण ::

चतुर्थ (वर्ष २००८)

:: पुस्तक प्राप्ति स्थान ::

श्री विजय राघव सरकार ट्रस्ट

करह, जिला-मुरैना (मध्यप्रदेश)

फोन नं. ०७५३२ - २३९२०९

:: न्यौछावर ::

इकत्तीस रुपये (३१/- रुपये)

यह आदर केवल धर्म रूप वृषभ को ही नहीं दिया गया, किन्तु तुच्छ–से–तुच्छ जीव को भी वे अपनी ओर से जहाँ तक बनता, सुख पहुँचाते थे। अपना शरीर और अपनी साधना दोनों प्राणियों को अर्पित कर देते थे। एक लोमड़ी जंगल से करह आश्रम की ओर चली आई। गीता के शब्दों में कह सकते हैं कि प्रारब्ध के यंत्र पर चढ़ी लोमड़ी को माया की प्रेरणा से हृदयस्थ ईश्वर ही उधर ले आये, या यों कहें कि होनहार उसे उधर ले आई। वह जैसे ही आई कि कई कुत्तों ने उस पर अचानक आक्रमण कर दिया। वह भागी भी तो आश्रम की ओर ही। कुत्तों ने उसे घायल कर दिया। साधुओं ने देखा तो उसे बचाया। बड़े महाराज जी को पता लगा तो आप आसन से उठकर लोमड़ी के समीप गये। बेचारी लोमड़ी इतनी घायल हो चुकी थी कि उसके अल्प प्राण उड़ने वाले ही थे। सब साधुओं को बुलवाया। महाराज जी ने सबसे कहा– ''भैया, सब साधु इसके लिये एक–एक राम नाम की माला जपो'' आज्ञानुसार सब सन्तों ने एक–एक माला जपी। जैसे ही माला पूरी हुई लोमड़ी की आयु भी पूरी हो गयी। मानों उसके प्राण इसी की प्रतिक्षा में थे। सन्तों के मुख से नाम सुनकर प्राण छोड़ने के लिए करह के आश्रम में आने वाली उस लोमड़ी के अहोभाग्य थे ! बड़े महाराज जी के हृदय में एक तुच्छ जीव के प्रति भी इतनी करुणा थी, इतनी व्याकुलता थी।

ये तो शिवजी हैं

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्त्तेरवधार्यते वपुः

–कुमार सम्भव

अर्थ– ''भगवान् शंकर चाहे भूषणों से भूषित हों– चाहे सर्प लपेटे हों, चाहे गज चर्म धारण करें या रेशमी वस्त्र, कपाल धारण करें, चाहे मस्तक पर चन्द्रमा, वे विश्व रूप हैं और विश्वमूर्ति शिव के रूप का निर्णय नहीं किया जा सकता।''

एक नेपाली साधु स्थान पर आया। उसका विचित्र वेश देखकर अन्य साधु उसकी ओर बड़े कोतूहल से देखने लगे। पर उस समय तो वैष्णवों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसकी भोजन–विधि देखी। आप कोठार घर में गये। वहाँ बड़े ध्यान से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। इधर–उधर दो–चार चूहों को दौड़ते हुए देखा। भण्डारे का कोठार ठहरा ! वहाँ चूहों की क्या कमी ! माल गोदामों के चूहे मोटे होते ही हैं फिर वह माल गोदाम तो साधुओं का था वहाँ के चूहों की मस्ती का क्या कहना ! बड़ी निर्भयता से वे अपना प्रदर्शन कर रहे थे। यकायक नेपाली साधु ने झपट्टा मारा और अपना दुपट्टा डालकर दो चूहों को दबोच लिया ! दोनों को पकड़ा और सबके देखते– देखते गाजर मूली की तरह मुँह में रखकर उनका स्वाद लेने लगे ! जीव हिंसा से डरने वाले वैष्णव साधुओं के लिए तो यह दृश्य असह्य हो गया और उन्होंने जाकर बड़े महाराज जी से उस साधु के घृणित आचरण के सम्बन्ध में बताया। बड़े महाराज जी के लिए तो सब रामजी की लीला थी। वे हँसकर बोले–''अरे भैया, वे नेपाल से आये हैं–साक्षात् शिवजी हैं ! उनसे कुछ न बोलो'' लीजिए अब वह शिवजी बन गए। अब किसका साहस कि कोई कुछ कहे ? अन्यथा स्थान के साधु उसके वहीं हाथ पैर तोड़ देते या मार के भगा देते ! वास्तव में वह साधु अघोरी था। बड़ा घिनौना था। वैष्णव साधुओं के स्थान पर कोई उसे एक क्षण भी न रहने देता, पर यहाँ तो वह 'नेपाली भगवान' के रूप में प्रसिद्ध हो गया। वह पंगत के समय दाल महाप्रसाद आदि

खा लेता पर अपने असली भोजन के दाँव पेच में भी रहता था। आश्रम में इधर–उधर चक्कर काटा करता और न जाने क्या–क्या कहा करता था। पर उस उन्माद दशा में भी कभी–कभी उसके मुख से देववाणी प्रकट होती थी। पर उसे बड़े महाराज जी ही समझते थे। उस समय तक करह पर देवी का तथा शिवजी का मंदिर नहीं बना था। पर आजकल जहाँ देवी का मंदिर बना है वहाँ खड़ा होकर नेपाली साधु कहता– ''जगदम्बे–जगदम्बे कर हाथ लम्बे'', ''इस जगह श्री माताजी का मंदिर, मंदिर के आगे तिवारे, तिवारे के आगे तिवारे बनेंगे।''

उसकी भविष्यवाणी सर्वथा सत्य हुई। उस स्थान पर देवी का बड़ा विशाल एवं भव्य मंदिर बना। करह पर महायज्ञ हुआ। उसके पश्चात् साधुओं को तीर्थयात्रा आदि करने के लिए रुपये बाँटे गये। नेपाली भगवान् न जाने तब कहाँ घूमते रहे ! जब सब रुपये बँट गये, तब बड़े महाराज जी के पास नेपाली भगवान् पहुँचे। कहने लगे– ''मुझे भी विदाई दी जाये।'' महाराज जी ने हँसके कहा– ''नेपाली भगवान् ! अब तो सब कुछ बाँट दिया गया, अब आपको क्या दिया जाय ? कुछ भी दिया ! नेपाली भगवान् ने उत्तर दिया। अचानक कुत्ते का एक खूबसूरत पिल्ला खेलता हुआ बड़े महाराज जी के समीप आ खड़ा हुआ। बड़े महाराज जी ने हँसकर कहा–''लो नेपाली भगवान्, यह पिल्ला आप स्वीकार करें'' नेपाली भगवान् पिल्ला पाकर बड़े प्रसन्न हुए। नाचने लगे। पिल्ले को उठा के कंधे पर धर लिया। वह पिल्ला उनका भविष्य में सच्चा प्रहरी बना। बड़े महाराज जी के उपदेश से उसने चूहा खाना छोड़ दिया। उसने कहा–'अरे नेपाली भगवान् ! आप तो शिवजी हैं। चूहा गणेश जी का वाहन है, उसे खायेंगे ? उसे खायेंगे तो गणेश जी दुखी होंगे।' साधु तो साँप बिच्छू को भी नहीं मारते। बात मान गया और अघोरीपन छोड़कर सात्विक जीवन बिताने लगा।

वृक्षों में राम

श्री परमगुरुदेव मानवों की या जीव–जन्तुओं की तो बात ही क्या, पेड़ पौधों में भी सीयाराम की झाँकी किया करते थे। करते भी क्यों नहीं। उनके नेत्रों में वही तो समाये थे। फिर तो ''जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सहजोबाई का अनुभव है–''

''सहजो गुरुदीपक दिया नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मधि एक ही सूझि परे भगवन्त॥''

और इस दशा में नेत्र जिधर झुकते हैं, राम उधर ही खड़े मिलते हैं। यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि नेत्र मूर्ति में लगे हैं या मूर्ति ही नयनों में लगी हुई है–

''नयन लगे वहि मूरति सों
किधों वह मूरति नयननि लागी।''

'पूज्य श्री महाराज जी अपने आसन पर माला फेरा करते सामने बरगद वृक्ष है वे उसकी ओर बार–बार देखा करते, मुस्कुराया करते बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। परन्तु उनकी मुख–मुद्रा सदैव ही प्रसन्न रहती अतः इस विशेष भाव से प्रसन्न बदन होने का कारण किसी ने नहीं पूछा। किसी का ध्यान नहीं गया। इस ओर ध्यान गया मनीरामदास जी पुजारी का। पुजारी अत्यन्त भावुक हैं, श्रीविग्रह की चर्चा में उनकी बड़ी निष्ठा है। वे जिस मंदिर में पूजा करते हैं उसके सामने मंदिर के वाम भाग में नीम के वृक्ष के नीचे बने हुये चबूतरे की कोर पर छोटी–सी मठी बनी है उसके ऊपर एक पटिया बिछी है। पटिया पर पूज्य परम गुरुदेव विराजमान थे। मंदिर के जगमोहन (मंदिर का बाह्य कक्ष) से महाराज जी के दर्शन होते थे। पूजा करते समय पुजारी की कई बार दृष्टि महाराज जी की ओर गयी और उन्होंने देखा कि वे बार–

बार बरगद की ओर सस्नेह निहार रहे हैं। पुजारी ने सोचा–''क्या है उधर, जिसे महाराज जी देखकर प्रसन्न होते हैं ? अन्ततः एक दिन पुजारी जी ने संकोच पूर्वक पूछा महाराज जी ! वट वृक्ष की ओर झुक–झुक कर आप देखते हैं। अत्यन्न प्रसन्न होते हैं, उधर कुछ है तो नहीं, फिर कौन वस्तु है जिसे आप देखते हैं– यह क्या लीला है ?'' बड़े महाराज जी केवल मुस्कुरा भर दिये, मनीरामदास जी पुजारी के कई बार पूछने पर पूज्य महाराज जी ने अपने हृदय का भाव प्रकट किया। बोले– 'देखो इस बरगद को, कैसा विचित्र रूप है इसका। इसमें तने से ही तीन शाखाएं हैं। दो शाखाएं एक साथ हैं। तीसरी शाखा कुछ हटी हुई है। देखते हो वे दोनों पास–पास वाली शाखाएं। एक श्याम है एक नूतन गौर है ये रामजानकी हैं' तीसरी शाखा श्री लक्ष्मण जी हैं, जो कुछ हट कर अपने जननी जनक तुल्य श्री सीताराम जी के सेवा में सावधान हैं।'' पुजारी जी के नयनों में जल भर आया। सचमुच इस दृष्टि से कभी देखा ही नहीं था। जब महाराज जी ने कहा तब पुजारी को भी लगा कि सचमुच राम लक्ष्मण जानकी तीनों बरगद में विराजमान हैं। तबसे मनीरामदास पुजारी भी उस भाव से बरगद को मानकर उस पर चन्दन फूल चढ़ाता है। सियाराम मय सब जग जानी, करो प्रणाम जोरि युग पानी।

वैष्णवता का प्रसार

विश्वव्यापी भगवान् विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं। वैष्णव शब्द का शब्दिक अर्थ यही है। क्योंकि विष्णु शब्द का अर्थ है व्यापक। वैष्णव विश्व व्यापक भगवान् का सेवक होता है। सबके सुख में सुखी, सबके दुःख में दुःखी होते हैं। इसी हेतु वैष्णवों में सेवा प्रधान होती है। इसी व्यापक अर्थ को ध्यान में रखकर भागवतकार कहते हैं–

निम्नगानां यथा गंगा देवाना मच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा।

–भाग, एक. १२ अ. १२

अर्थ– ''नदियों में गंगा, देवताओं में भगवान अच्युत और जैसे वैष्णवों में भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं वैसे ही पुराणों में भागवत श्रेष्ठ है।''

विषपान करने को उद्यत भगवान् शिव को लक्ष्य कर भागवतकार ने कहा है–

''तप्यन्ते लोकतापेन प्रायशः साधवो जनाः''

''प्रायः साधु जन लोक ताप के सन्ताप से सन्तप्त होते हैं।'' गुजरात के सन्त का वह प्रसिद्ध पद तो प्रायः सभी ने सुना होगा जो महात्मा गांधी का प्रिय भजन था, जिसकी प्रथम पंक्ति है :–

'वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणेरे'

पराई पीर से पीड़ित होने वाला भक्त ही सच्चा वैष्णव है। वह चाहे किसी जाति का हो। एक सन्त ने कहा– ''गन्ना काला हो गया टेड़ा रस मीठा होता है, उसी प्रकार भक्त किसी भी जाति का हो तो वह विश्व वन्द्य ही होता है।''

भक्ति ग्रंथों में तो यह बात और भी कड़ाई से कही गई है।

शुद्रं वा भगवद् भक्तं निषादं श्वपचं तथा
वीक्षत जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्

–हरिभक्तिविलास

''भगवद् भक्त शूद्र हो, निषाद हो अथवा चाण्डाल ही क्यों न हो यदि उसे भी कोई केवल जाति सम्बन्ध से देखता है, वह अवश्य नरक में पड़ता है।''

वैष्णव का इतना गौरव उसके व्यापक लक्षण को लेकर ही व्यक्त किया गया है। निर्दिष्ट भाव–गंगा में अवगाहन करने के लिए ही मुख्यतः चार आचार्यों ने चार घाटों का निर्माण किया जिन्हें 'सम्प्रदाय' कहा

जाता है। उन सम्प्रदायों में दीक्षित व्यक्ति वैष्णव कहलाता है। परन्तु यह अभिधान पारिभाषिक है। हाँ, पारिभाषिक होने पर भी शास्त्रों ने वैष्णवगत गौरवशाली गुणों का होना ही अनिवार्य माना है। 'पुरुषार्थ चिन्तामणि' ग्रंथ में कहा है :–

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते
नैकादर्शी त्यजेद्स्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी,
समात्मा सर्वजीवेषु निजाचारादविप्लुतः
विष्णवर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते।

अर्थ– ''वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित जो पुरुष अत्यन्त संकट के समय या अत्यन्त हर्ष का अवसर उपस्थित होने पर भी एकादशी व्रत नहीं छोड़ता तथा जो समस्त प्राणियों में आत्मभाव रखता है, अपने आचार से च्युत नहीं होता तथा अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवान के अर्पण कर देता है उसे 'वैष्णव' कहते हैं।''

पूज्य श्री बड़े महाराज जी तो त्याग वैराग्य के रत्नाकर एवं तपोमूर्ति तथा अत्यन्त करुणागर थे। वे सच्चे अर्थों में वैष्णव तो थे ही साथ ही वैष्णवों की आचार पद्धति के अनुसार वे वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित भी थे। नूराबाद वाले श्री तपसी बाबा महाराज के शिष्य थे। आरम्भ में वे वैष्णवों के बाह्याचार का भी पालन करते थे। भस्म रमाते, धूनी तपते और अपने हाथ से भोजन बनाते थे। इसीलिए लोग पहले उनके पास आटा दाल ही ले जाते थे। पश्चात् उनकी साधना अन्तर्मुखी हो गयी। प्रभु की प्रेरणावश जो कोई भी सात्विक भोजन बना के ले आता, वे ग्रहण कर लेते थे। मिट्टी का पात्र रखते थे। परमहंसों की वृत्ति स्वीकार कर ली थी या यों कहना ठीक होगा कि संसार की ओर से वैराग्य एवं प्रभु की ओर अगाध अनुराग के कारण वह वृत्ति स्वतः आविर्भूत हो गई। ऐसी वृत्ति के लिए अनुरागी सन्त सदा कामना करते रहे हैं।

"ऐसो कब करिहो मन मेरो
कर करवा हरवा गुंजन को
कुंजनि माँहि बसेरो"

इस वृत्ति की साधना एकान्कि थी, सामूहिक नहीं। सहसा किसी को शिष्य नहीं बनाते थे। अवश्य ही उनका वह जीवन बहुत कुछ एकान्तिक था। पर अनन्त जनसमुदाय के वे श्रद्धा केन्द्र, आशा दीप एवं विश्वास के स्थिर बिन्दु थे। इस प्रकार जन–जन के आकर्षण स्थल, आसपास के प्रदेश में अतीव प्रसिद्ध एवं प्रातर्वन्दनीय पूज्य चरण का इस परमहंस वृत्ति में प्रवेश देखकर कई वैष्णव सन्तों को क्षोभ होता था। एक वैष्णत सन्त श्री केशवदास जी ब्रह्मचारी ने एक घटना मुझे स्वयं सुनाई। संवत् 1991 की बात है। वे सन्त बड़े महाराज जी का नाम सुनकर उनके दर्शनार्थ करह पर गये। मार्ग में महाराज जी को भोजन ले जाने वाले कुछ लोग मिले। उन्हीं के साथ वे करह पर पहुँचे। पूज्य महाराज जी पटिया पर बैठे थे, कुछ पानी बरस गया था, इसलिए वे जिस पटिया पर बैठे थे उसके चारों ओर से लाल चींटियों के दल के दल निकल कर महाराज जी के शरीर पर चढ़ गये थे। पर महाराज जी बैठे थे– शान्त, निश्चल। मुख पर उद्विग्नता का लेश भी नहीं था। देखने वाले अवश्य परेशान थे कि बाबा गुड़ के ढेले हैं या चीनी के ढेर, जो ये चींटियां उन पर चढ़ गयी हैं। और इनके शरीर में इससे कोई रोमांच या सिहरन तक नहीं है। हाँ, महाराज जी के लिये, यह कोई विशेष बात न थी। ऐसा कई बार हो जाता था। यहाँ तक कि उनकी देह पर खानखजूरे चढ़ जाते थे और वे निर्विकार शंकर की तरह असम्भ्रान्त रूप से बैठे रहते। एक बार तो उनके आसपास उनकी पटिया पर बेहद चींटियाँ रेगती रही और आश्चर्य की बात थी कि २८ घण्टे तक उसी रूप में चींटियों के दल उमड़ते रहे तथा महाराज जी भी २८ घण्टे तक अपने आसन पर

विराजमान रहे, आसन पर से न हिले न डुले। आखिर उठते या निकलते तो चींटियों को रौंदना पड़ता, बिना चींटियों को कुचले जा नहीं सकते थे। इतनी करुणा थी उनमें। तो ये वैष्णव सन्त भी उनके शरीर पर लाल चींटियों को चढ़ी हुई देखकर एवं चींटियों का काटना याद करके स्वयं सिहर उठे। पूज्य महाराज जी की इस करुणा तथा सहनशीलता से बहुत प्रभावित हुए, थोड़ी ही देर में वे चींटियों के दल सहसा उतर–उतर कर बिलों में गायब हो गये, इससे कुछ आश्चर्यचकित भी हुए। परन्तु जब उन्होंने सबके यहाँ से लाई गई रोटियों को ग्रहण करते देखा तो उनके मन में बड़ी ग्लानि हुई कि सन्त तो हैं पर आचार्यकोटि के नहीं हैं। खैर, वे सन्त उस दिन तो वहीं रहे। दूसरे दिन प्रातः स्नान करके गीता पाठ करने बैठे। क्योंकि करह से शीघ्र चल देने का विचार था, अतः पाठ क्या किया, जल्दी–जल्दी पन्ने पलट लिये। आसन बाँधा और बड़े महाराज जी के पास दण्डवत् करने पहुँचे। पूज्य महाराज जी ने मन्द मुस्कान के साथ कहा– ''सन्त भगवान् ! आपका गीतापाठ तो बड़ी जल्दी हो गया।'' महाराज जी के इस प्रश्न से महात्मा लज्जित तो हुए ही पर उससे भी अधिक आश्चर्यचकित थे। उन्होंने सोचा– ''हम बिलकुल अलग एकान्त में पाठ करते थे, इन्हें ये बात कैसे मालूम हुई और साथ ही यह भी कैसे मालूम हो गया कि मैं गीता पाठ कर रहा था। अवश्य इनमें कोई चमत्कार है।'' वैष्णव सन्त ने सादर प्रणाम किया। आज्ञा लेकर दूसरे प्रसिद्ध सन्त 'मुले बाबा' के दर्शनार्थ उनके आश्रम पर गये। वे भी परमहंस वृत्ति में रहते थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि मुले महाराज जिस मिट्टी के पात्र से पानी पी रहे थे, उसी को शौचार्थ ले गये। लौटकर उसी से कुल्ला किया, हाथ मुँह धोया ! वैष्णव महात्मा अपने ही सामने यह सब देखकर कहने लगे– 'महाराज, यह मिट्टी का पात्र है, इसे आप शौच में ले गये तो यह अपवित्रत नहीं हुआ ? फिर उससे

जल पीना तो सर्वथा अनुचित है ?' महात्मा ने कहा– ''आप लोग शौच में धातु पात्र ले जाते हैं तो उन्हें कैसे शुद्ध करते हैं ?'' इन्होंने कहा– ''मिट्टी से।'' महात्मा ने तत्काल सहज भाव से उत्तर दिया– ''फिर हमारा पात्र तो निरा मिट्टी का है वह अपवित्र कैसे ?'' वैष्णव सन्त इस उत्तर से निरुत्तर हो गये।

पर बड़े महाराज जी के यहाँ ऐसे चातुर्य की, ऐसे तर्कपूर्ण उत्तर की कभी गुंजाईश नहीं थी। वे मिट्टी का पात्र रखते थे। किसी ने कहा– ''महाराज जी, यह ठीक नहीं, इसकी जगह यह धातु पात्र रखिये'', तो वही रख लिया। वस्तुः बाह्म रूप पर उनका कोई विशेष आग्रह नहीं था कि वे कैसे हों। लोक–विलोभन या लोक सम्मान की कामना के लिए तो उनका हृदय ऊषर भूमि था क्योंकि उक्त भावना साधना के लिए अनिष्टकारिणी होती है। इसलिए तो सन्त तिलक तुलसीदास जी ने कहा है–

''लोक मान्यता अनल सम, कर तप–कानन दाह''

किन्तु साधना का यह एकान्तिक रूप अधिक समय तक न चला। उनके भजन का प्रताप चारों ओर फैलने लगा। जब सुरभित पुष्प अपने कोष को उन्मुक्त कर खिल उठता है तब अपनी मधुर गन्ध को कहाँ छिपा सकता है ? वह स्वयं चाहे सघन पल्लवों में भले ही छिपे पर भावुक भ्रमर उसे ढूँढ़ ही लेते हैं। सतों का ज्ञान, प्रकाश रूप होता है। प्रकाश का स्वयं अपने आप में क्या उपयोग ? दूसरों के मार्ग–दर्शन में ही उसकी सार्थकता है। सन्तों की साधना के सुफल का प्रसाद सभी को मिलता है। वस्तुतः उस समय ऐसे पथ–प्रदर्शक की, ऐसे शांति दूत की आवश्यकता थी। जो जीवन में प्रकाश, आत्मा में बल और हृदय में निर्भयता भर सके। महाराज जी की साधना ने यही किया। श्रद्धालु लोग, जंगल में भी उनके पास पहुँचने लगे। जब चन्द्रमा अपनी षोडशकलाओं से पूर्ण होकर गगन में उदित होता है। तो

उसके बिना कहे ही समुद्र में लहरों का मेला लगने लगता है। जब सूर्य निकलता है तो अपने आप जागने लगते हैं अथवा चुम्बक पत्थर जब समीप होता है तो लोहा अपने आप उधर आकृष्ट होने लगता है। पूज्य महाराज के समीप बड़ा सुख मिलता और बड़ी शांति मिलती थी। कोई भोला व्यक्ति किसी कीमती इत्र का मूल्य भले ही न समझे पर उसकी सुगन्ध से वह मस्त तो हो ही सकता है ? ''सन्त कैसे बोलते हैं, कैसे चलते हैं, भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, कैसे निर्भय रहते हैं, किस प्रकार निस्पृह रहते हैं, कितने इच्छा रहित हैं, कितने संयमी, कितने मृदु लेकिन कितने निश्चयी, कितने निरहंकारी, कैसे सेवा–सागर, कितने निरलस, कितने क्षमाशील, उनका वैराग्य कैसा रहता है। कैसी निर्मल दृष्टि होती है, कैसा विवेक होता है, कैसा अनासक्त व्यवहार होता है।'' यह सब सहवास में आने के कारण लोग समझने लगे। जो एक बार भी दर्शन कर जाता उसका अनेक बार दर्शन करने को जी चाहता था। इन आने वालों में से दो दर्शक ऐसे निकले जो केवल दर्शक न होकर दर्शनीय बन गये। जिन्होंने ''सर्वतो भावेन' परम गुरुदेव के चरणों में आत्म–समर्पण कर दिया। ये यही दोनों भविष्य में भक्ति–भावना के अखण्ड स्रोत सिद्ध हुए, जिनसे आगे चलकर शिष्य–परम्परा के दो प्रवाह बहे, ठीक गंगा–यमुना के दो प्रवाहों की तरह। दोनों का गन्तव्य स्थल एक दोनों की मूल भावना एक, इस दृष्टि से दोनों का एकीकरण सम्मिलन पावन बना–ठीक संगम की तरह मंगलमय !

उनमें से एक हैं, जिन्हें आज का जनवर्ग, गालव खोह के तपस्वी परहंस भूषण श्री श्री १०८ बाबा लखनदास जी महाराज के रूप में जानता है। वे बड़े महाराज जी के प्रथम सौभाग्यशाली शिष्य हैं, अत्यन्त क्षीणकाय–केवल अस्थिमात्र, पर आत्मबल के भण्डार अतः सबल एवं सुपुष्ट। निर्भयता की मूर्ति, सिद्ध परम्परा के प्रतीक हैं वे।

उनकी रहनी ऐसी अद्भुत है कि उसे कोई बिरले ही लिख पाते हैं, उनके विचित्र आचरण बड़े–बड़ों को दिग्भ्रान्त कर देते हैं।

बड़े महाराज जी के दूसरे शिष्य हैं श्री छोटे महाराज जी। अपने पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठावान्, उनके अतिप्रिय शरणापन्न उनकी एक–एक इच्छा, उनकी तनिक–तनिक कामना की पूर्ति में अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं चतुर्मुखी प्रभाव को लगाकर लोगों को चकित कर देने वाले एवं स्वयं को कृत–कृत्य मानने वाले, विविध उत्सवों के द्वारा भोले ग्रामीण जनों के सम्मुख, जंगल में मंगल की झांकी, राम–लीला, रासलीला के अत्यन्त उत्कृष्ट रूप, गीता। रामायण, भागवत आदि के अनूठे प्रवचन एवं भारत भूमि के विभिन्न भागों के विविध सन्त–रत्नों के दुर्लभ दर्शनों को सुलभ कर देने वाले, धरती पर वैकुंठ जैसा उतार देने वाले, सन्त साहित्य के अद्भुत सारग्राही, गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरित मानस के अनुपम वक्ता, शांति एवं धैर्य के सिन्धु, देवोपम दिव्य रूप श्री श्री १०८ बाबा रामदास जी महाराज हैं।

प्रथम शिष्य

देवे किनका दरद का, टूट, जोरे तार।
'दादू' साधे सुरति कूँ सो गुरु पीर हमार।

संवत् १९८१ की बात है। जेठ का महीना था। चिलचिलाती धूप आग बरसा रही थी। ठीक उसी समय एक नौजवान चलकर करह पर बड़े महाराज जी के पास पहुँचा। ब्राह्मण शरीर, इकहरा बदन इरादे का पक्का। फिर जिसके लगी हो वह न सर्दी देखता है न गर्मी, करह से कुछ दूरी पर एक ग्राम है–सेवा। युवक वहीं का रहने वाला था, ग्वालियर राज्य की पुलिस में नौकरी करता था। सब कुछ छोड़कर आया था–नौकरी, घर–परिवार अनेक सम्बन्ध। मन से दूसरे दरबार में रहने का संकल्प जो कर चुका था।
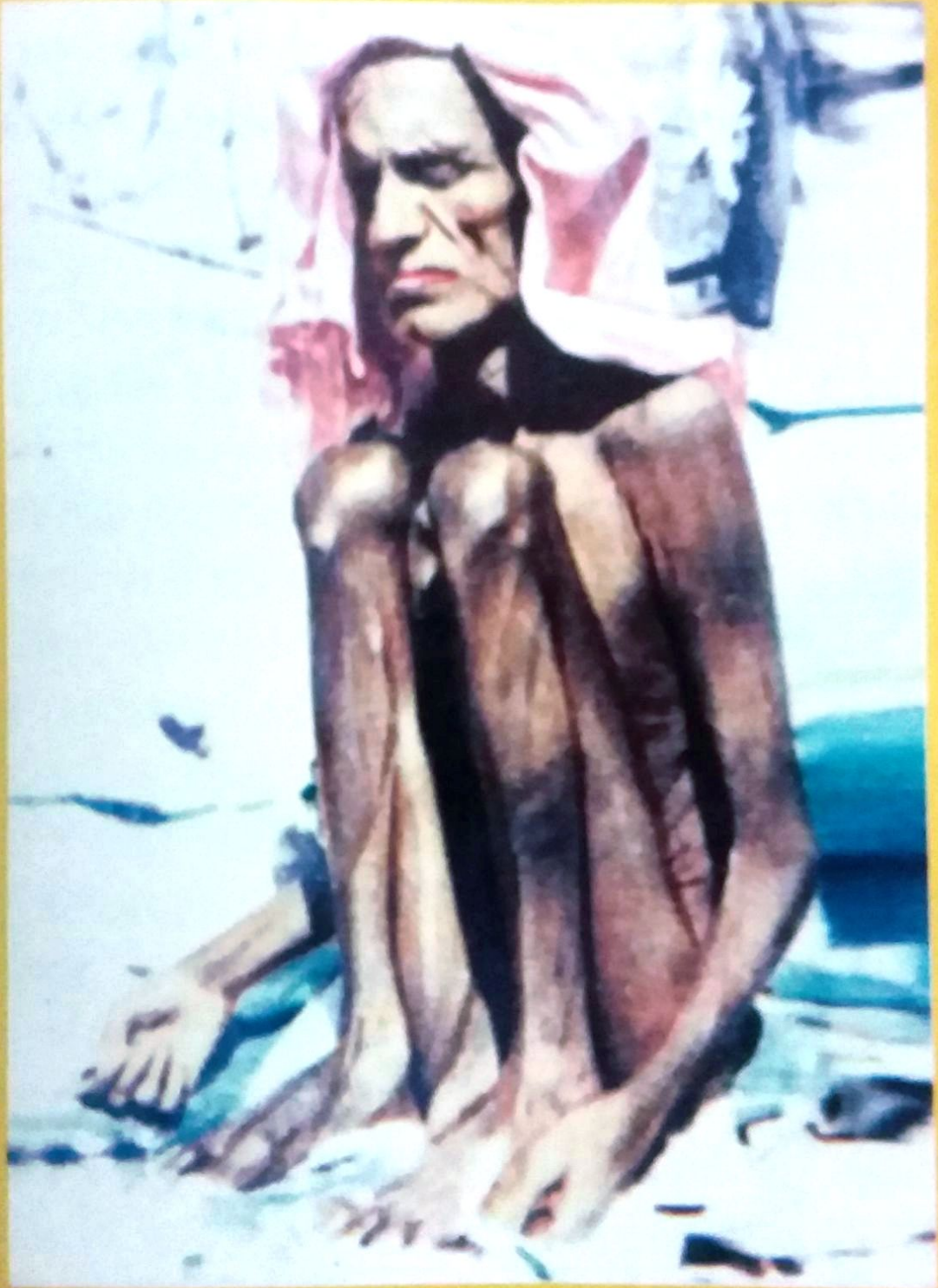
श्री पूज्य बाबा लखनदास जी महाराज

बड़े महाराज जी ने लख लिया कि युवक दृढ़ निश्चयी है तो पहले उसे नरसिंह मंत्र दिया और पश्चात् राममंत्र। मानों शक्ति के भण्डार की दो कुंजियाँ दे दीं। राममंत्र के साथ नरसिंह मंत्र देने की परम्परा यहाँ की विशेषता रही है। मंत्र देने के पश्चात् नामकरण भी कर दिया 'लखनदास'। जिनके सम्बन्ध में थोड़ा–सा संकेत हम ऊपर कर चुके हैं। परमहंस वृत्ति तो थी ही। लखनदास जी ने भी उसी का अनुसरण किया। वे मंत्र लेकर तीर्थ यात्रा को चल पड़े। साथ में एक ताम्र पात्र, एक धौकी लाठी, दो हाथ का टाट एवं दो लँगोटी बस इतना ही उनके पास सामान था। जब ये ऋषिकेश स्वर्गाश्रम पहुँचे तो किसी अपरिचित सन्त ने इन्हें एक रेशमी चद्दरा दिया।

जब इन्होंने उसे अस्वीकार किया तो उस सन्त ने कहा–''यह अवश्य ले लो, मामूली चद्दर नहीं, भगवान के सिंहासन के नीचे का चद्दर है'' यह कथन सुनकर इन्होंने प्रभु की प्रेरणा समझ कर स्वीकार कर लिया। बद्रीनारायण से लौटकर पुनः करह पर आये। साथ में रामेश्वर पर चढ़ाने के लिए गंगोत्री से गंगाजल भी लाये। उस समय करह पर विशेष मकान नहीं थे। वही मुख्य मंदिर और एक तिवारा था। मंदिर की दशा भी अच्छी नहीं थी। श्री लखनदास जी महाराज ने गंगाजल की शीशी मंदिर में टाँग दी थी। सोचा कि महाराज जी से आज्ञा लेकर रामेश्वर जायेंगे। ये महाराज जी की सेवा में बैठे थे कि दूँदनाक बाबा उनके गंगाजल को पी गया। बड़े दुखी हुए। बड़े महाराज जी ने हँसके कहा– ''अरे लखनदास ! समझ लो भगवान् शंकर ही स्वयं पी गये हैं। तुम्हारा गंगाजल तो रामेश्वर पर चढ़ गया।'' कुछ दिन महाराज की सेवा में रहकर महाराज जी की आज्ञा से नूराबाद के समीप टेकरी पर चले गये। पाठकों को स्मरण होगा कि यह टेकरी वही थी जहाँ सर्वप्रथम बड़े महाराज जी ने निवास किया था। वहाँ इन्हें कई चमत्कार हुए। वहाँ से ये भ्रमण पर पुनः

निकले। उस भ्रमण काल में भी दो एक ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे इनका आत्मबल अधिक बढ़ा। उसके पश्चात् वे खिरावली गाँव के पास गालव खोह में जा बिराजे। उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैली। उनकी शिष्य परम्परा भी बढ़ने लगी। केवल उन्हीं के नहीं, उनके शिष्यों के भी शिष्य बढ़ने लगे। नाम सुन–सुनकर दूसरे सन्त भी दर्शनार्थ आने लगे। उनका समस्त शिष्य परिवार परम हँस वृत्ति के अनुसार रहने लगा। जो वस्तु साधना की चरम सीमा पर उपलब्ध होती थी उसका आचरण साधना के पूर्व ही किया जाने लगा। यह एक चिन्तनीय विषय था। यही विषम परिस्थिति दूसरी ओर भी हुई। बड़े महाराज जी के द्वितीय शिष्य बड़े लोकप्रिय हुए। उनका संक्षिप्त वृत्त निम्न प्रकार है :–

द्वितीय शिष्य

दो.– गगन–भवन नग–से जड़े उड़गन जगमग होय।
किन्तु चन्द्र बिन तिमिर को दूर करे ना कोय॥

संवत् १९८० तक कचहरी नूराबाद में लगती थी। इसके पश्चात् वह मुरैना चली गयी। जब नूराबाद में कचहरी थी तब छोटे महाराज जी उसी में काम करते थे। परन्तु तब वे छोटे महाराज जी नहीं– 'जगमोहन' थे। जगमोहन बड़े संगीत प्रिय, मित्र मण्डली के रत्न रामलीला नाटक आदि मनोरंजक कार्यक्रमों के मंजु संयोजक, साथ ही विनम्र साधुसेवी थे। जो कुछ कमाते, सुहृद सन्तों में ही खर्च कर देते। घर के लिए एक पैसा न बचता। वस्तुतः घर को इनके पैसे की आवश्यकता भी नहीं थी। नूराबाद में रहते, सायंकाल श्री तपसी जी महाराज की सेवा में अवश्य पहुँचते थे। जैसे ही मंदिर का द्वार खटखटाते, तपसी जी महाराज का प्रश्न होता– "कौन ?" "मैं हूँ जगमोहन" उत्तर देते तो महात्मा जी कहते– 'अरे जगमोहन, तूने जग

मोह लिया' तपसी महाराज का यह कथन जगमोहन के लिए सफल आशीर्वाद हो गया। वे नियम पूर्वक तपसी जी महाराज की चरण सेवा करने प्रतिदिन जाते थे। अवकाश के दिन 'करह' पर श्री बड़े महाराज जी के दर्शनार्थ भी पहुँचते थे। वहीं निवास करते। महाराज जी को रामायण सुनाते। जगमोहन की वाणी सचमुच बड़ी मोहक थी। मधुर कंठ से जब उच्च स्वरों में रामायण की चौपाईयाँ गाते तो बड़े महाराज जी के नेत्रों से झर–झर आँसू झरने लगते थे। कभी–कभी तो बड़े महाराज जी इतना फूट–फूट कर रोने लगते कि संकुचित होकर जगमोहन रामायण गान बन्द कर देते थे, पर बड़े महाराज जी बड़ी करुणामयी वाणी में अनुनय करते–एँरे जगमोहन ! अरे भैया थोड़ी और कह, वह कहते ''महाराज जी ! आप इतना अधिक रो पड़ते हैं कि हमारा जी घबड़ा जाता है।'' महाराज जी कहते– 'अरे नहीं भैया' रघुनाथ जी का ऐसा ही चरित्र है, सुनकर रुलाई आ जाती है, थोड़ा और कहो। बड़े महाराज जी के अनुनय पर वे फिर कहने लगते। इस प्रेम का जादू जगमोहन पर भी चल गया। संवत् ८१ में श्री हरिद्वार का कुम्भ होने वाला था, उससे एक महीना पूर्व ही वृन्दावन धाम में सन्त समागम हुआ। जगमोहन वहीं पहुँचे। एक महीने तक सत्संग का लाभ उठाया और जब सन्त कुम्भ में पहुँचे तो आप भी उनके साथ ही गये। डेढ़ महीने तक संत दर्शन, कथा श्रवण तथा गंगास्नान का आनन्द लिया। इतने दिनों के संत–संग के कारण ह्दय में वैराग्य भावना तथा प्रभु के प्रति उत्कट भावना दोनों प्रबल हुई। परन्तु भावना को उचित मोड़ देकर तथा उसे प्रबल वेगशाली बनाकर सागर तक पहुँचाने वाले सच्चे संत की आवश्यकता थी। वे ऐसे पहुँचे हुए गुरु की खोज में चल पड़े। चित्तौड़गढ़, मन्दसौर, उज्जैन, भोपाल, चित्रकूट एवं प्रयागराज होते हुए श्री अयोध्या जी पहुँचे। सरयू में स्नान किया। हनुमान गढ़ी पर हनुमान जी से प्रार्थना की कि हम अनेक स्थानों पर भटक आये, कहीं

भी चित्त को शांति नहीं मिली ! मुझ पर कृपा करो, मुझे शरणापन्न बनाओ उनकी इस सच्ची प्रार्थना ने असर किया। अदृश्यवाणी द्वारा स्पष्ट संकेत मिला– ''करह पर जाओ वहीं शरणापन्न बनो, तुम्हें शांति मिलेगी।'' सुनकर हृदय भावविभोर हो गया। वे लौटकर करह पर आये। पूज्य श्री बड़े महाराज जी के शरणापन्न हुए। इस प्रकार संवत् ८२ में ही श्री छोटे महाराज जी पूज्य परम गुरु के शरणापन्न हुए। संवत् ८१ में श्री श्री १०८ श्री लखनदास जी महाराज भी शरणापन्न हुए थे। उनके कुछ महीने बाद ही पूज्य बड़े महाराज जी के ये द्वितीय शिष्य बने, पूज्य बड़े महाराज जी की आज्ञा से ही मुरैना मण्डी से १ मील पूर्व की ओर 'बड़ोखर' के हनुमान जी पर साधना प्रारंभ की। यद्यपि यह स्थान उनके मनोनुरूप नहीं था क्योंकि मुरैना में उनके कई घनिष्ठ मित्र थे। उनकी मित्र मण्डली उनके विविध गुणों पर इतनी मुग्ध थी कि वह वहां बराबर पहुँचती रहती। 'बड़ोखर' का हनुमान मंदिर विशाल वट वृक्ष के पल्लवों से आच्छादित है। केवल पल्लव ही नहीं जटा प्ररोहों का जाल, जालीदार झिंझरियों का दृश्य उपस्थित करता है। छोटे महाराज जी मंदिर के सामने लगभग दो ढाई हाथ लम्बे पत्थर के पाट पर बैठे रहते रात दिन का वही आसन था उनका। यदि किसी ने दे दिया तो खा लिया नहीं तो राम–नाम लेते रहे। रात में भूल से नींद आ गई तो आ गई अन्यथा सारी रात राम–लगन में गाते रहते। जागरण के कारण नयन अरुण वर्ण हो गये थे। शरीर कृश हो गया था। हाँ नाम–प्रेम पुष्ट होता जा रहा था। 'नित नव राम प्रेम पन पीना।' चाहे कोई आये या जाये, न किसी से बातें करना न किसी की ओर देखना। मित्र मण्डली आती, तंग करती, हँसी मजाक उड़ती और यह यत्न करती कि उनका पुराना अन्तरंग मित्र जगमोहन अपने पूर्व स्वभाव के अनुकूल ही उनसे हँसे, बोले, पर उन्हें क्या पता था कि उनका पूर्व परिचित 'जगमोहन' सच्चा 'रामदास' बन गया है। उन्हें

आश्चर्य था कि आकर्षक वेश भूषा में सुशोभित रहने वाला उनका साथी एक लँगोटी धारी एवं मृत्तिका पात्र धारी कैसे बन गया। मित्रों से ये नहीं देखा गया। उन्होंने बल पूर्वक शोभन वस्त्र पहना दिये। मृत्तिका पात्र फैंक दिया। उनके इस प्रयास में जहां उनका प्रेम था वहाँ प्रभु की ओर से ये सब परीक्षाएँ थीं। मित्रों के प्रयत्न विफल हो गये। पूज्य महाराज जी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। कई बार ऐसे चमत्कार हुए कि इनकी मित्र मण्डली, सेवक मण्डली बन गयी। ''कोटि विघ्न जो सन्त को तदपि नीति नहि त्याग।''

तीन वर्ष तक वे उसी अवस्था में नाम–निरत रहे उन्हें हनुमानजी की, कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इसी सिलसिले में उन्हें कुछ प्रेरणाएँ हुईं, वे प्रेरणाएँ लोकसंग्रह के लिये थीं। उन्हीं से प्रेरित होकर लोकहितार्थ गाँव–गाँव भ्रमण किया। स्थान–स्थान पर अखण्ड भगवन्नाम कीर्तन की प्रथा डाली। वे उसी गाँव में ठहरते थे जहाँ सात दिन का अखण्ड कीर्तन होता था, भगवल्लीला का आयोजन होता।

प्रभु में प्रेम और लोक में मर्यादा इन दोनों का प्रसार, इन दोनों का मणि–कांचन संयोग–जैसा व्यावहारिक समन्वय स्थापित हो, यह उनकी हार्दिक भावना रही। इसकी सफलता के लिये 'सीताराम' प्रचार के साथ गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस को माध्यम बनाया। तुलसी के 'मानस' में उन्हें लोकमानस की अविकृत प्रतिच्छाया दिख पड़ी। गाँवों में वे जब रामचरित की कथा कहते थे। तो जनता विभोर हो जाती थी। 'मानस' की अद्भुत व्याख्या, सरसवाणी, स्नेह और उदारता मण्डित निष्कपट हृदय एवं त्यागपूर्ण व्यवहार, इनके ये सब गुण जनता पर जादू का असर करते थे।

उनका प्रभाव बढ़ा, अनुयायी बढ़े, उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत होने लगा। उन्होंने देखा कि गाँव में तो फिर भी श्रद्धा के अंकुर हैं पर नगरों में आधुनिक वातावरण की तीक्ष्ण किरणों ने श्रद्धा की सुकुमार

भावनाओं को झुलसा दिया है अतः उन्होंने नगर–जीवन में प्रवेश किया। इससे उनके न चाहने पर भी उनके अनुयायिओं की संख्या बढ़ने लगी।

इस प्रकार दो प्रभावशाली शिष्यों की शिष्य परम्परा विस्तृत होने लगी। से सब तीर्थों में, वैष्णव–स्थानों में, कुम्भ के अवसर पर साधु समाज में आने जाने लगे। मिलना–जुलना अच्छा होता है। कूपमण्डूकता दूर होती है। आचार–पद्धति, रहन–सहन भाषादि का परिज्ञान होता है। करह को नया शिष्य–समुदाय भी मिलने लगा। पर उसे एक कठिनाई, एक संकोच का अनुभव होने लगा। क्योंकि वह वैष्णवों के आचार से शून्य था। परमहंस वृत्ति में रहने के कारण स्वच्छन्द रहन–सहन एवं स्वच्छन्द खान–पान का आदी था। फलतः सर्वत्र ही उसे घृणा तथा तिरस्कार का लक्ष्य बनना पड़ा। अब वह टकसाली साधु समाज से कतराने लगा। यह अच्छा लक्षण नहीं था। इससे उन्हें दुःख भी होता था। धीरे–धीरे उनकी व्यथा–कथा बड़े महाराज जी के कानों में आने लगी। वह इस बात का संकेत पहले भी कर चुके थे। छोटे महाराज जी भी इससे सहमत थे। परन्तु यह प्रश्न इतने तीव्र रूप में इससे पहले कभी उपस्थित नहीं हुआ था। इसका एक ही उपाय था कि स्थान पर पुनः वैष्णव–पद्धति की प्रतिष्ठा की जाय। समस्त शिष्य समुदाय आचार का पालन करें। कंठी, तिलक यज्ञोपवीत धारण कर विधि–मार्ग से चलें, पर यह तब तक सम्भव नहीं था जब तक गुरुवर्ग उक्त पद्धति को नहीं अपनाता। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि श्री बड़े महाराज जी स्थान पर कोई क्रांतिकारी परिवर्तन के इच्छुक होते तब वे स्वयं कुछ नहीं कहते थे। सिड़ी पागलों के माध्यम से प्रकट करते थे, इस तरह सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करते थे। स्वयं तटस्थ रहते थे– बिलकुल कमल–पत्र की तरह निर्लिप्त !

वस्तुतः करह स्थान की साधु परम्परा वैराग्य एवं तपः प्रधान थी आचार प्रधान नहीं। उसमें उपासना थी किन्तु वह भाव प्रधान–हृदय प्रधान थी, क्रिया–प्रधान नहीं। नाम जप की, नाम कीर्तन की अनन्य अनुगामिनी थी, किन्तु उपचार प्रधान नहीं थी। इस त्याग एवं वैराग्य की भाव धारा में करह स्थान भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह स्वयं वैराग्य का पोषक है। जन समुदाय से पृथक होने के साथ ही वह एक ऐसा स्थान है। जिससे कोई जागीर–जायदाद नहीं लगी और न कहीं से मासिक या वार्षिक कोई बन्धान बंधा है। इस तरह वह स्वयं त्याग वैराग्य का प्रतीक है। यही कारण था कि वहाँ की शिष्य परम्परा में उन बातों की प्रधानता थी। पर उसके साथ शास्त्रीय आचार विचार का संयोग होना आवश्यक था। यह सोने में सुगन्ध की तरह इक्षु में फल की तरह, चन्द्रमा में लांछन–हीनता की तरह उनके वैराग्य में चार चाँद लगा देने वाली बात थी।

हाँ, करह का गुरुस्थान, नूराबाद का नरसिंह मंदिर था। वहाँ शास्त्रीय आचार पद्धति का पालन होता था। नूराबाद वाले तपसी महाराज के दूसरे शिष्य श्रीयुत महन्त हरीरामदास जी, 'व्याकरणाचार्य' थे। वे आचार–प्रधान वैष्णव–धर्म के कट्टर अनुयायी थे। विद्वान होकर भी अर्चाविग्रह की पूजा में अत्यन्त निष्ठावान् थे। जन समुदाय से उदासीन एवं दिन–दिन भर शास्त्राभ्यास में निरत रहते थे। परन्तु उनके शास्त्र–ज्ञान तथा उनकी विद्वत्ता के चारों ओर उनका स्वभाव बबूल के काँटों की बाड़ थी। परिणामस्वरूप, उनसे किसी को कुछ लाभ, उनके ज्ञान का न मिला। उन्हीं के शिष्य हैं– ''बंगाली बाबा।''

वह करह पर गये। वहाँ जाकर उनकी वृत्ति विचित्र हो गयी। दिन–दिन भर दौड़ लगाते, हाथ में तीर कमान लिये उछलते–कूदते रहते थे और हाथ उठा के कहते–'लखनदास शंकर हैं, रामदास विष्णु हैं, अब वैष्णव धर्म चलेगा। सबको कण्ठी तिलक धारण करने

पड़ेंगे, चोटी रखनी होगी।' बंगाली बाबा इसी प्रकार कूदते और चिल्लाते थे। इसी तरह कहते–कहते एक महीना हो गया। तब बड़े महाराज जी ने छोटे महाराज जी को बुलाकर कहा कि ''भैया, अब तो रामजी की इच्छा है वैष्णव धर्म को फिर से चलाना होगा।'' छोटे महाराज जी ने कहा– ''महाराज जी, अब बड़ी कठिनाई होगी, जो नियमों के बन्धन में नहीं रहे हैं। उनसे वैष्णव धर्म के नियमों का पालन होना मुश्किल जान पड़ता है, फिर आपकी जैसी आज्ञा होगी, वैसा किया जायेगा, इतनी ही बात होकर रह गयी। इसमें और कुछ प्रगति नहीं हुई। श्री छोटे महाराज जी को उस समय वृन्दावन जाना था, वे चले गये। इधर बंगाली बाबा वैष्णव धर्म की पुकार लगाते ही रहे। बड़े महाराज जी ने साधुओं से कहा–''भैया, ये तो रामजी की इच्छा है, जोरदार इच्छा है। अब इसमें देर नहीं करना है। इतना कहकर वे गुरु स्थान नूराबाद की ओर चल पड़े। स्थान का साधु समुदाय उनके पीछे हो लिया। वे नूराबाद के नरसिंह मंदिर पर आये। वहाँ से पहाड़ी के भक्त फेरनसिंह को छोटे महाराज जी के पास वृन्दावन भेजा गया। फेरन सिंह ने जहां जा के महाराज जी से सारा वृत्तान्त कहा। वे वहाँ से तत्काल नूराबाद आये। बड़े महाराज जी की आज्ञानुसार सीतापुर के बूढ़े बाबा को बुलवाया गया। वे बड़े महाराज जी के बड़े गुरु भाई थे। सब लोग श्री तपसी महाराज के चित्र के सम्मुख एकत्र हुए। चित्र के सामने तुलसी की कंठियाँ रख दीं। सीतापुर के बूढ़े बाबा ने तपसी महाराज के चित्र से स्पर्श कराके एक कण्टी महाराज जी के कण्ठ में बाँध दी। बड़े महाराज जी ने पहले श्री लखनदास जी महाराज के गले में कण्ठी बाँधी। पुनः श्री छोटे महाराज जी के कंठ में बाँधी। उन्होंने अन्य शिष्यों की कंठी–तिलक दिये। शिखाएँ रखवाई गईं। भण्डारा हुआ और उस दिन से करह पर वैष्णव धर्म की पुनः प्रतिष्ठा हुई।''

अनूठी नाम निष्ठा

एकांगसगिनी गंगा पावयेदखिलं जगत्
अंग प्रत्यंग-संव्यापी नाम किं कर्तुमक्षमम्

अर्थ– ''प्रभु के एक अंग केवल चरण से सम्बन्ध रखने वाली गंगा अखिल विश्व को पवित्र करने की सामर्थ्य रखती है किन्तु प्रभु का नाम तो उनके प्रत्येक अंग से सम्बन्ध रखने वाला है, अतः वह क्या नहीं कर सकता ?'' वेद भगवान् कहते हैं–

नामानि ते शतक्रता ! विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे

–ऋ. ३/३७/३/

अर्थ– ''हे इन्द्र ! आपके नामों का हम वैखरी आदि चारों वाणियों से उच्चारण करते हैं।''

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः
हिरण्या गर्भ इत्येष मा मा हिंसी दित्येषा यस्मान्न।

–जात इत्येषः

अर्थ– ''जिन प्रभु का महान् यशस्वी नाम है, उसकी उपमा कहीं नहीं है। उसका वर्णन 'हिरण्यगर्भ आदि मंत्रों से, 'मामाहिंसीत्' इस मंत्र से तथा यस्मान्न जातः इत्यादि मंत्रों से किया जाता है।''

पुराणों में तो अपार नाम महिमा है। सभी जाति, सभी धर्म एवं सभी देश के सन्तों ने नाम की प्रशंसा की है। सन्त ज्ञानदेव कहते हैं–

''नाम–संकीर्तन करते–करते ज्ञानदेव जब निर्णयात्मक समाधि लगाकर बैठा तब उसने हृदय में प्रभु का ध्यान करते हुए वरदान मांगा–''

वृत्तियों सहित मेरा अहंकार लुप्त हो, मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति में निवृत्ति की छाप पड़ने दे। मेरा मन तेरे चरणों में रहने दे, मेरे देहेन्द्रयादि सब तू ही बन जा, मेरी कीर्ति मत बचने दे। दया क्षमा शांति रूप सिद्धि भी

मुझे उपाधि रूप प्रतीत होने लगी है। इसलिये मुझे केवल तेरे नाम की समाधि प्राप्त हो। दूसरी जगह वे कहते हैं– ''तत्व ज्ञान की चर्चा करके अनेकों ने अनेक तत्व खोज निकाले हैं, लेकिन नाम सर्वश्रेष्ठ और सर्व सुलभ तत्व है।'' इसलिये अन्य मार्ग छोड़कर अन्तः करण पूर्वक वाणी से नाम–जप चलता रहे, ज्ञानदेव तो निरंतर अन्तः करण में मौन पूर्वक हरिनाम जपता रहता है। सांख्य–मार्ग द्वारा पच्चीस तत्वों का विश्लेषण, करे लेकिन इतना करने पर भी अन्त में तत्वसार रूप हरि को प्राप्त किया, कहा जायेगा कि विश्लेषण की कला सधी। नाम स्मरण में ऐसा कोई झंझट नहीं है क्योंकि वहाँ आरंभ से ही भगवान् से सम्बन्ध है। योगमार्ग से प्राण ऊर्ध्वगामी करके, अनाहत स्वरूप अजपा का जप करें, लेकिन वह भी मन के निश्चय के बिना नहीं सधेगा। नाम स्मरण में तो मनका निश्चय पहले से ही है, इसलिये नाम–स्मरण ही पंथराज है। उसके बिना जीवन व्यर्थ है। शरीर जायेगा, सम्पत्ति जायेगी, सृष्टि जायेगी, आखिर काल भी जायेगा परन्तु ''ईश्वर का नाम नहीं जायेगा क्योंकि प्रभु जो सबका मूलाधार है, अपने अधिष्ठान पर सनातन खड़ा ही है तथा वह और उसका नाम, एक ही है।'' परमज्ञानी, परमयोगी सन्त ज्ञानदेव आगे कहते हैं– ''ईश्वर का नाम साधना के लिये बीज–रूप होने से कारण प्रारंभ से अन्त तक, सभी भूमिकाओं के लिये, हर भूमिका के अनुरूप उपयोगी है। इसलिये शंकर जैसे ज्ञानी, ध्रुव प्रहलाद जैसे भक्त और सामान्य अज्ञानी जीव नाम का आश्रय लिया करते हैं।''

ज्ञानदेव ने एक बार निवृत्तिनाथ से पूछा–

''आकाश सबसे व्यापक है, आकाश से क्या व्यापक है ?''

निवृत्तिनाथ ने उत्तर दिया–

''आकाश से नाम व्यापक है।''

आगे ज्ञानेश्वर जी कहते हैं–

''जिह्वरूप धनुष में हरिनाम का तीर लगाकर तन्मयता से निशाना साधिये कि व्यापक तत्व हस्तगत हुआ और प्रेमरूप वैकुण्ठ बिलकुल समीप, याने हृदय में दिखाई देने लगता है।'' सन्त शिरोमणि श्री ज्ञानेश्वर जी गीता की टीका में 'राजविद्या राजगुह्य' प्रकरण के अन्तर्गत कहते हैं– 'महात्मा हरि कीर्तन के लिए प्रेम से श्रृंगार करके नाचते हैं। कीर्तन उनमें पापों का नाम भी नहीं रहने देता है। वे मनोनिग्रह तथा बाह्येन्द्रिय निग्रह को निस्तेज कर देते है तीर्थ अपने स्थान से च्युत हो जाते हैं। यम कहने लगता है– कि हम किसका नियमन करें, दम कहने लगता है कि किसे जीते ? तीर्थ कहने लगते हैं कि हम किसका उद्धार करें क्योंकि दोष जो थे वे दवा के लिये भी नहीं बचे !

ऐसे सन्त प्रभात हुए बिना ही जीवों को प्रकाश प्राप्त करा देते हैं। अमृत के बिना ही प्राणियों के जीवन का रक्षण करते हैं। और योग साधना के बिना ही मोक्ष को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं। वे राव–रंक में भेद नहीं करते। बैकुण्ठ को जाने वाला क्वचित् ही दृष्टिगोचर होता है। इन साधुओं ने तो यही जब जगह बैकुण्ठ ला दिया है। कबीरदास जी का अनुभव है कि नाम के प्रति रत्ती भर अनुराग भी जीवन को सार्थक कर देता है–

नाम जो रत्ती एक है पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरे जारि करे सब छार॥

दादूदयाल जी तो यहाँ तक कहते हैं कि मुख से सिवा नाम के और कुछ निकलना ही नहीं चाहिए–

राम तुम्हारे नाम बिन जो मुख निकसे ओर
उस अपराधी जीव को तीन लोक नहिं ठोर
नाम न आवे तब दुखी आये सुख सन्तोष
'दादू' दुख सुख नाम का दूजा हरष न सोक

दादू हरि का नाम जल मैं मछली ता माहि
संग सदा आनँद करे बिछुरत ही मरि जाहि
प्रति जो मेरे पीव की पैठी पिंजर माहिं
रोम-रोम पिउ पिउ करे 'दादू' दूसर नाहिं

सन्त तिलक तुलसीदास जी ने नाम–महिमा पर जो अपने भाव–पुष्प चढ़ाये, वे अद्बितीय हैं। उनकी सुगन्ध सर्वोपरि है, वे कहते हैं–

हिय निरगुन नयननि सगुन रसना राम सुनाम
मनहु पुरट संपुट लसत 'तुलसी' ललित ललाम।

और अन्त में उन्होंने नाम महिमा की सीमा कर दी–

कहौं कहां लगि नाम बढ़ाई,
राम न सकें नाम गुन गाई।

परम गुरुदेव पूज्य श्री बड़े महाराज जी की नाम के प्रति जो अगाध श्रद्धा, अखण्ड निष्ठा, अपूर्व विश्वास एवं अनन्य अनुरक्ति थी वह अत्यन्त अद्भुत थी। अब तक हम जितने सन्तों की जीवनियों में नाम के प्रति जो भाव सुनते आये हैं, जो चमत्कार सुनते आये हैं वह सब कुछ बड़े महाराज जी में था। करह की तपः स्थली का एक–एक वृक्ष, वृक्ष का एक–एक पत्र उनके नाम प्रेम का साक्षी है। रात दिन अखण्ड नाम जप चलता था कभी कीर्तन के रूप में कभी जप के रूप में और कभी स्मरण के रूप में नाम महाराज उनके पवित्र ओठों में, उनके सुकण्ठ में और उनके हृदय में विराजते रहते थे। उनके पास चाहे कोई कितना ही बड़ा आदमी जाता, और चाहे किसी भी समय जाता वे राम–नाम कीर्तन में ही संलग्न मिलते, जो जाता उसे भी लगाते। न वहां लम्बे कुशल प्रश्न और न दिखावटी शिष्टता का अभिनय। पर निन्दा और परिचर्चा का अवकाश ही कहाँ ? यदि कोई लौकिक प्रश्न करता भी तो 'राम जी की लीला है', 'वे ही जानें' भैया, भगवान से प्रार्थना आदि ऐसे ही नपे–तुले वाक्यों में उत्तर समाप्त हो जाता था।

पता नहीं, राम–नाम कहने में उन्हें कितना आनन्द आता, कितना रस आता था। यह तो वही जानें, पर देखने वाले जानते हैं कि जब वे कीर्तन करते, या अकेले नाम जप करते तो नाम–रस–पान करता हुआ दृष्टिगोचर होता था मानो कोई कई दिनों का बुभुक्षित रसगुल्ला खाने के बाद मुख में इधर उधर जीभ चला रहा है। उनके मुख को देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है। यदि दिन भर कीर्तन होता तो दिन भर आसन पर बैठे झूमते रहते थे। साधारण लोग नाम के उस स्वाद को क्या जानें ? तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है–

तुलसी जौलौ जगत की मुधा माधुर मीठ।
तोलों सुधा सहस्त्र सम राम भगति सुठि सींठ।

उन्हीं की भावना के अनुसार करह के मुख्य वृक्षों में सभी दीवारों पर, मंदिरों में सर्वत्र राम–नाम अंकित किया गया। महाराज जी का विश्राम स्थान कीर्तन–भवन था। उसमें सर्वत्र रामनाम अंकित था। एक चौकोर प्रस्तर पर रमणीय वर्णों में रामनाम लिखा था। जिसे अर्चा विग्रह की तरह महत्व दिया जाता था। महाराज जी प्रतिदिन उसकी वन्दना करते थे। आश्रम पर जब कोई कठिन समस्या आती तो राम–नाम महाराज से ही विनय करते थे। एक बार की बात है। उस समय महाराज जी परमहंस वृत्ति में थे। परन्तु आश्रम पर कुछ सन्त रहने लगे थे। भगवान की सेवा पूजा भी होती थी। अभ्यागत या वहीं रहने वाले सन्तों के लिए भोजनादि की व्यवस्था रामभरोसे होती थी। आय का कोई साधन था नहीं। जब कहीं से आ जाता, कोई दे जाता तो भगवान का भोग लगता था। एक बार ऐसा हुआ कि कहीं से कुछ नहीं आया। साधु भूँखे थे। आषाढ़ का महीना था। घोर गर्मी पड़ रही थी। ऐसे समय में सन्त भूँखे रह गये। हाँ, राम नाम रस का पान अवश्य होता रहा। शाम के लगभग ६ बजे होंगे। सन्त सायं कृत्य के लिए उठ गये। महाराज जी आसन से उठे और सीधे 'कीर्तन–भवन' में पहुँचे। वहाँ और कोई नहीं था। केवल मनीरामदास पुजारी एक तरफ बैठा

था। महाराज जी गये और जहाँ राम–नाम लिखा था, बैठ गये। कहने लगे–हे श्रीराम नाम महाराज ! आज मंदिर में भोग नहीं लगा है, आपके सब सन्त भूँखे हैं, कृपा करो हाथ जोड़कर यह करते तथा अंकित राम नाम का स्पर्श करते थे। निवेदन करके सायं कृत्य के लिये गये। निवृत्त होकर अपने आसन पर आ विराजे। इतने में ही नूराबाद के मोतीराम और रघुवरदयाल दोनों भाई घी, आटा, दाल आदि सामान लेकर आ पहुँचे। बड़े महाराज जी से कहने लगे– 'आप तो हम से भी पहले आ गये ?' पास में छोटे महाराज जी बैठे थे। उनसे कहा– महाराज ! आपको तो ऐसा नहीं करना चाहिए था कि थोड़े से आटा दाल के लिये बड़े महाराज जी को नूराबाद भेज दिया ? किसी भी साधु को भेज देते। क्या हम लोग आटा सामान न देते कि बड़े महाराज जी को भेजा ? यह बात तो अच्छी नहीं। मोतीराम की बात सुनकर बड़े महाराज जी मुस्कुरा रहे थे और छोटे महाराज जी आश्चर्यचकित ! मोतीराम ने कहा– 'खैर, हमारे तो बड़े भाग्य थे, हमारा तो घर पवित्र हो गया कि वहाँ बड़े महाराज जी पधारे। चरणों की पावन धूल पड़ गयी।' छोटे महाराज जी ने कहा– ''महाराज जी को न किसी ने भेजा और न वे नूराबाद ही गये, वे तो धुन से उठकर निवृत्त होने गये और अभी–अभी आके यहां बैठे हैं। नूराबाद कब गये ? मोतीराम और रघुवरदयाल दोनों भाई चकित थे। कि यह क्या बात है ? आज दोपहर के बाद बड़े महाराज जी हमारे घर पधारे थे। और बिलकुल साक्षात् इसी रूप में। हम लोगों से कहा था कि करह पर आटा सामान शीघ्र ले चलो, साधु भूँखे हैं।'' लेकिन आप कहते हैं, महाराज जी गये ही नहीं। बड़े महाराज जी बोले– ''भैया राम जी की लीला है ? उन्होंने कोई लीला की होगी।'' प्रसाद बना, साधुओं की पंगत हुई। मनीरामदास पुजारी ने पुछा ''महाराज जी यह क्या लीला है ?'' बोले–'एँरे मनीराम दास ! हमारे राम तो यही हैं, हम नूराबाद काहे को गये, यह तो भैया, राम नाम महाराज की लीला है।'

सोते में भी नाम जप

निरंतर राम का नाम जप, उनके रोम–रोम में रम गया था। उनकी साँस–साँस में राम नाम की लहरें उठती थीं। पूरे दिन तो नाम कीर्तन, नाम जप करते ही थे पर शयन के समय भी भगवन्नाम जप चलता रहता है।

एक समय की बात है। भादों का महीना था। जन्माष्टमी का उत्सव समाप्त हो चुका था। रात के १२ बजे के पश्चात् मनीरामदास पुजारी छोटे महाराज की चरण सेवा करके लौटा। जब वह 'सन्त निवास' के सामने से निकला तो संत निवास के सामने सीढ़ियों पर एक लम्बा सर्प चढ़ता जा रहा था। उसकी फुफकार और सनसनाहट का शब्द सुनकर पुजारी चौंका। पैर पड़ने से जरा ही बच गया। मनीरामदास शीघ्र बड़े महाराज जी के समीप आया। बड़े महाराज जी सोये हुए थे। उनके सिरहाने भक्त लोग टार्च रख देते थे कि रात में उठें तो प्रकाश कर लें। पुजारी टार्च लेने गया पर महाराज जी सोते देख बिना आज्ञा के कैसे उठाता ? एक मिनट तक खड़ा रहा। पर पुजारी यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि महाराज जी सो रहे हैं परन्तु उनके मुख से मधुर–मधुर रामध्वनि निकल रही है। पुजारी ने टार्च उठा ली अपना कार्य किया, प्रणाम कर जा सोया। प्रातः जब चरण वन्दना करने आया तो महाराज जी से रात की घटना सुनाई। सुनकर बड़े महाराज जी मुस्कुराये और बोले– एँरे मनीरामदास ! रामजी की लीला है।'

मनीरामदास जी ने पूछा–महाराज जी, रामनाम में विश्वास कैसे हो, कैसे सदैव नाम जप हो सके ? महाराज जी ने कहा– ''भैया, यह कहने सुनने की बात नहीं है, हृदय से अनुभव करने की वस्तु है। विश्वास से नाम जप करो, विश्वास हो जायेगा। धीरे–धीरे सब होता है।'' एँरे मनीरामदास ! तुम तो रामजानकी जी के प्रेमी हो।

सिंह भाग गया

जब कभी कोई भक्त पूज्य श्री बड़े महाराज जी से अपना दुःख सुनाता तो वे बड़ी सहानुभूति से सुनते थे। और कभी स्वयं पूछते थे। जंगलात का एक ठेकेदार था 'ईश्वर के झरना' पर उसका काम था। वहीं झोंपड़ी बनाके रहता था। उसकी झोंपड़ी झरने से लगभग एक फलाँग की दूरी पर थी। पीने का जल झरने से आता, स्नानादि भी वहीं होते थे, परन्तु 'ईश्वर का झरना' भी बड़ा निर्जन स्थान है। काफी जंगल है। उस झरने पर एक सिंह आने लगा। सिंह झरने पर पानी पीता, पानी में लोटता, घण्टों वहीं रहता था। उसके डर से झरने पर जाना बन्द हो गया। पानी का बड़ा दुःख ! बेचारा ठेकेदार बड़े महाराज जी के पास आया। चुपचाप घण्टों बैठा रहा। चाहता था कि अपना कष्ट बड़े महाराज को सुना दे, पर संकोच वश कहने का साहस नहीं हो रहा था। बड़े महाराज जी जैसे समझ गये। उन्होंने पूछा– 'कहो भगत ! क्या बात है ?' भगत की तो जान में जान आ गयी। बोला–महाराज जी आप तो अन्तर्यामी हैं, फिर भी पूछते हैं ? ईश्वर के झरने पर रहता हूँ। ठेके का काम है, पर एक सिंह प्रतिदिन झरने पर आता है। उसके मारे हम लोगों को पीने के लिए पानी मिलना दुर्लभ हो गया है। यदि पानी पीकर चला जाया करे तब भी कोई बात नहीं वह तो घण्टों वहीं रहता है। हम लोग पानी के लिए तरसा करते हैं। यदि कोई छेड़खानी करे तो जान से हाथ धोना पड़े। अब आपकी शरण में आया हूँ। ऐसी कृपा कीजिये जिससे उस शेर का वहाँ आना बन्द हो जाय। महाराज जी बोले–'भैया वे तो नरसिंह भगवान हैं, वे ऐसे किसी से नहीं बोलते। लेकिन तुम्हें डर लगता है तो ऐसा करना कि जब सिंह पानी पीने आवे तो तुम डरना नहीं। तुम उसके पास जाकर इतने जोर से 'जै जै सीताराम' कहना कि शेर के कानों मे पड़ जाय बस फिर

कभी न आयेगा। महाराज जी के इन वचनों पर विश्वास करके साहसपूर्वक उसके समीप राम नाम कहना भी बड़े साहस का काम था। परन्तु उसे विश्वास हो गया। ठेकेदार ने वैसा ही किया और सिंह रामनाम की ध्वनि सुनकर वहाँ से गायब हो गया। फिर कभी नहीं दिखाई दिया। यह था उनका नाम के प्रति अटूट विश्वास। यह घटना स्वयं ठेकेदार के द्वारा ही ज्ञात हुई। आये दिन इस प्रकार की विश्वास वर्धक घटनाएँ हुआ ही करती थीं। पूज्य श्री बड़े महाराज जी का साधनामय जीवन एकान्तिक था पर सामूहिक जीवन कीर्तनमय बन गया था। अनवरत भगवन्नाम का उच्चारण उनके मुख से होता था। जो उनके समीप गया उसे भी कीर्तन का रंग लगा देते थे। आज भी गायें चराने वाले ग्वाले, खेलते हुए गाँवों के बालक, घर में काम–काज करती हुई स्त्रियाँ उनके सरल एवं दिव्य कीर्तन को गुनगुनाती रहती हैं। उनके सरल एवं सिद्ध कीर्तन के बोल हैं–

"सीताराम, सीताराम,
सीताराम जय सीताराम।"

नाम महिमा की जितनी भी अद्‌भुत कथाएं सुनते उन सब पर उनका पूर्ण विश्वास था। कोई भी ऐसा असम्भव कार्य नहीं था जो नाम से नहीं हो सकता था। इस सम्बन्ध में उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं था। हाँ, वे चमत्कार दिखाने के पक्षपाती कभी नहीं थे। उनका विश्वास था कि साधु के लिए सिद्धियों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। सिद्धि साध्य नहीं होती। सिद्धियां तो साधना के मार्ग में घास–फूँस की तरह तमाम उगती हुई मिलती हैं– उन्हीं की ओर देखने से साधु–मार्ग से च्युत हो जाने का सदा भय रहता है। एक बार लेखक ने स्वयं पूछा था कि महाराज जी ! आपको सिद्धियाँ तो प्राप्त हो गयी होंगी ? इस पर हँसे और बोले–अरे भैया, वह तो बड़े–बड़े साधु सन्तों को मिलती हैं। हम तो नाम के सहारे दिन काट रहे हैं 'वह प्रेम और विश्वास हम में

कहाँ?' महाराज जी का यह कथन मानों हम लोगों की ओर संकेत करता था। उनकी दृष्टि में तो सिद्धियाँ खेला करती थी। एक घटना है। अगहन का महीना था। अगहन शुल्क पक्ष की पंचमी, विवाह पंचमी होती है, क्योंकि उस तिथि को श्री रामचन्द्र जी महाराज का विवाह था। उस समय करह स्थान के मंदिर में मनीरामदास पुजारी पूजा करता था। जब विवाह–पंचमी के आने में एक–या–दो दिन शेष रह गये थे तो पुजारी महाराज जी के समीप रात में गया। बड़ी देर तक बैठा रहा। बड़े महाराज जी ने पूछा– 'क्यों पुजारी क्या बात है ? पुजारी ने कहा–'महाराज जी, परसों विवाह पंचमी है ? पूछा–भैया उस दिन क्या होता है, तुम्हें क्या चाहिए ?' पुजारी ने कहा– 'फूलमाला, फल, मेवा, पंचामृत तथ पँजीरी, यही सब होता है। उत्सव मनाया जाता है। भगवान का भोग लगता है।' साधुओं की पंगत होती है। मिथिला और अयोध्या जी में इसी तरह मनाया जाता है, महाराज जी ने कहा– 'एँरे पुजारी, भैया तू भगवान से प्रार्थना करके सो जा, वही सब करेंगे।' मनीरामदास पुजारी चरण–स्पर्श करके गया और भगवान की प्रार्थना कर जा सोया। प्रातः ४ बजे उठा और महाराज जी के चरण छूने पहुँचा। बड़े महाराज जी ने कहा–कौन, मनीरामदास है ? ''जी हाँ महाराज जी''– पुजारी ने उत्तर दिया। बड़े महाराज जी उठे और प्रातः भ्रमण के लिए चले गये। मनीरामदास ने महाराज जी का आसन समेटा। जैसे ही आसन उठाया वैसे ही वहाँ कई नोटों को देखकर पुजारी का चेहरा खिल गया ! गिने तो पूरे सौ के नोट थे।

सामान आया। खूब प्रसाद बना, भगवान का भोग लगा, महात्माओं की पंगत हुई, पुजारी के नयनों से आनन्द के मोती बिखरने लगे। बड़े महाराज जी के चरणों में गिर पड़े महाराज जी ने कहा– ''भैया, रामजी की लीला है, वे ही सब कर रहे हैं''

युगल नाम का कीर्तन

अस्मदाद्यविषयेऽपि विशेषे
रामनाम तव धाम गुणानाम्
अन्वबन्धि भवतेव तु कस्मात्
अन्यथा ननु जनुस्त्रितयेऽपि

–नैषधीय २१–११५

अर्थ– ''यद्यपि हम उसके विशेष वैशिष्ट्य से अवगत नहीं हैं, फिर भी हे प्रभो ! आपका रामनाम सब से अधिक गुणों का धाम है, यदि ऐसा न होता तो आप इसी नाम से दाशरथि राम, परशुराम एवं बलराम ये तीन अवतार ग्रहण क्यों करते ?''

यों तो प्रभु के सभी नाम मंगलमय हैं, मधुर हैं अघनाशक हैं। सभी में अपार सामर्थ्य है, अनन्त शक्ति– सम्पन्न हैं, परन्तु उच्चारण के द्वारा उस अपरिमित शक्ति–पुंज का स्फुरण जितना रामनाम के द्वारा होता है वैसा अन्य से नहीं। गीता में कहा है– ओंम् इत्येकाक्षरं ब्रह्म, ओम, यह एकाक्षर ब्रह्म है। उपनिषदों में प्रणव की अपार महिमा है। प्रणव व्युत्पत्ति एवं उच्चारण की दृष्टि से रामनाम से अभिन्न है। इसलिए तुलसीदास जी ने रामनाम की महिमा में कहा है–

''विधि हरि हर मय वेद प्रान सो''

संस्कृत का ग्रंथ 'महारामायण' तो दो कदम आगे और भी बढ़ जाता है। उसका कथन है–

''रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः''

मोक्षदायक प्रणव की उत्पत्ति भी राम नाम से ही हुई निःसंदेह राम नाम की बड़ी महिमा है। वैयाकरण लोग भी 'रमन्ते योगिनोयस्मिन्' जिसमें योगी लोग रमण करते हैं, ऐसी व्युत्पत्ति करते हैं। इसी अभिप्राय से तुलसीदास जी ने मानस में यह बताया कि प्रभु के नामों में ''राम''

सर्वश्रेष्ठ हैं। नारदजी श्रीराम से वरदान के रूप में इसी भाव की पुष्टि कराते हुए कहते हैं–

राका रजनी भक्ति तब रामनाम सोइ सोम
अपर नाम उडगन विमल बसहु भगत उर व्योम

वैसे तो जिस रूप का उपासक है उसके लिए उसी का नाम सर्वश्रेष्ठ है पर तात्विक दृष्टि से, सारल्य की दृष्टि से तथा उसके उच्चारण में नाभिस्पर्शी उठने वाली नाद की दृष्टि से शास्त्रों ने एवं अनुभवी सन्तों ने रामनाम को नाम शिरोमणि कहा। उसे परम रमणीय कहा है, अनन्य कृष्णोपासक श्री सूरदास जी ने भी 'बड़ी है रामनाम की ओट' कहा है। इतना ही नहीं, उन्होंने रामनाम की महिमा गाते हुए कहा है–

अद्‌भुत राम नाम के अंक,
धर्म अँकुर के पावन दल द्वै मुक्ति वधू ताटंक।
मुनि मन–हंस पच्छ जुग, जाके बल उड़ि ऊरध जात
जनम मरन काटन को कर्तरि तीछन बहुत विख्यात
अंधकार अज्ञान हरन को रवि ससि जुगल प्रकास
वासर निसि दोउ करें प्रकासित महा कुमग अनयास
दुँहूँ लोक सुख करन हरन दुख वेद पुराननि साखि
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये प्रेम निरंतर भाखि।

पूज्य श्री बड़े महाराज जी रामोपासक तो थे ही अतः रामनाम का जप, रामनाम का कीर्तन उनका सर्वस्व था– उनका लक्ष्य था। रामनाम से इतनी लौ लगी थी कि देर तक लगातार यदि कोई कथा कहता तो उतने प्रसन्न नहीं होते थे।

रामनाम उनका सर्वस्व था। वही उनकी सिद्धि, वहीं उनका साधन था। तरह–तरह के रंग–बिरंगे कीर्तन तो उन्हें प्रिय नहीं थे।

और वास्तव में यह ठीक भी था। यह तो बहिरंग वृत्ति के लोगों के लिये ही आवश्यकता होता है। किन्तु निष्ठावान सन्त के लिए एक लक्ष्य,एक नाम, एक रूप, एक भावना ही सुखद होती है। पूज्य महाराज जी केवल 'सीताराम' नाम का जप करते, उसी का कीर्तन करते। बीच में कोई और–और कीर्तन करने लगता तो कहते– 'अरे भैया, कीर्तन एक नाम का ही अच्छा होता है, भौंरा बनना अच्छा नहीं मछली बनना अच्छा है।' किसी समय कोई वृन्दावन के भक्त पधारे। सीताराम नाम की ध्वनि हो रही थी। उन्होंने 'सीताराम' धुन से साथ राधेश्याम कहना शुरू किया। परन्तु जब बड़े महाराज जी ने एक ही नाम का कीर्तन करने का संकेत किया तो उस साधु को बड़ी ठेस लगी। वह चुप हो गया। महाराज जी समझ गये कि साधु को दुःख पहुँचा है, उसी दिन सायंकाल के समय एक मस्तराम संत आ पहुँचे। महाराज जी अपने आसन 'पटिया' पर बैठे थे। ठीक उनके सामने मस्तराम जा खड़े हुए और बड़े महाराज जी से पूछने लगे–करह वाले बाबा कौन हैं ? बड़े महाराज जी ने नम्रता से कहा–सन्त भगवान की क्या आज्ञा है ? 'हम उनके शास्त्रार्थ करेंगे, वे कृष्ण नाम को गौण कैसे समझते हैं ? मस्तराम बोले। महाराज जी ने कहा– ''कृष्ण भगवान का नाम गौण कैसे हो सकता है ? ऐसा तो नहीं समझा जाता।'' मस्तराम ने कहा– ''तब आप आज से सीताराम नाम के साथ राधेश्याम नाम को भी कीर्तन मे सम्मिलित कीजिये।'' बड़े महाराज जी ने उन्हें हाथ जोड़े और उसे भगवान की आज्ञा मानकर शिरोधार्य किया। तब से स्थान पर 'सीताराम' नाम के साथ 'राधेश्याम' नाम का भी कीर्तन होने लगा। रामलीला के साथ कृष्ण लीला का भी प्रबन्ध किया जाने लगा। वस्तुतः प्रभु के दोनों नाम, दोनों रूप अभिन्न हैं। ब्रजभूमि के परम सन्त एवं परम रसिक श्री नारायण स्वामी ने अपनी वाणी में कहा–

'नारायन' दोउ एक हैं रूप रंग तिल रेख।
उनके नयन गंभीर हैं इनके चपल विसेख॥

विशेष चपलता को छोड़ कर सब बातों में मेल है। कैसी सुन्दर भावपूर्ण बात कहीं। अष्टछाप के महान् भक्त– कवि श्री नन्ददासजी ने कहा–

राम–कृष्ण कहिए उठि भोर
अवध ईस वे धनुष धरे हैं, यह ब्रज माखनचोर।
उनके छत्र चँवर सिंहासन भरत सत्रुहन लछिमन जोर।
इनके लकुट मकुट पीताम्बर नित गायन सँग नंदकिसोर॥
उन सागर में सिला तराई इन राखो गिरि नख की कोर।
'नन्ददास' प्रभु सब तजि भजिये जैसे निरखत चन्दचकोर॥

सन्त ज्ञानेश्वर जी ने भी बड़े ही मनोरम भाव प्रकट किये हैं वे कहते हैं :–

''राम और कृष्ण भगवान के ये दोनों नाम अति सुन्दर हैं– एक सत्य मूर्ति एक प्रेम मूर्ति। दोनों मिलाकर एक ही हैं। हृदय–मंदिर में उसकी स्थापना कर, ताकि बन्धन सारे टूट सकें और तेरी ही शक्ति से तेरा छुटकारा हो। ध्यान करते समय ज्ञानदेव वाणी से ये नाम जपता है और हृदय में उभयरूप–मंडित श्री मूर्ति का चिंतन करता है।'' इस दृष्टि से करह का साधु मण्डल अत्यधिक उदार एवं सहनशील है किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी साधु वहाँ जाके देख सकता है।

नरसिंह शिला पर

बहती गंगा में हाथ धोने की कामना प्रायः सभी के मन में रहती है। लोक के सम्मुख वह कभी नग्न रूप में आती है तो कभी सुसज्जित वेश–भूषा में। उससे प्रेरित मानव कभी परोपकारी प्रतीत होता है तो

कभी सेवक। किन्तु उसके उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं आता। बात कुछ ऐसे ही व्यक्ति के सम्बन्ध में है। मुरैना के एक भगतजी थे। करह पर वर्ष में वह चार बार आते थे। पूज्य बड़े महाराज जी तो सबका सम्मान करते थे फिर सन्त ब्राह्मण की तो बात ही क्या ? उनका तो वे अत्यन्त आदर करते थे। भगत जी का भी आदर होता था। वे कथा कहते तो बड़े मनोयोग से सुनते थे उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे। एक बार भगत जी ने 'हटूपुरा' गाँव में कथा बांची। कथा का कार्यक्रम सात दिन का था। उनके मन में इच्छा जगी कि यदि करह वाले बाबा महाराज सात दिन तक मेरी कथा में आ विराजें तो कंचन बरसे। वे करह पर पहुँचे। बड़े महाराज जी ने आदर किया तो उनका साहस और बढ़ गया। उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की, हठूपुरा चलने का आग्रह किया किन्तु महाराज जी ने मना कर दिया। क्योंकि महाराज जी उस समय कहीं नहीं जाते थे। भगत जी मन मसोस कर रह गये। वे हठूपुरा लौटकर गये। वहां लोगों से कहा कि 'यदि तुम लोग इस गाँव को पवित्र करना चाहते हो, तथा कथा को सफल और जीवन को सार्थक करना चाहते हो तो करह बाबा को बुलाने चलो।' फिर क्या था भोली जनता का मुँह ठहरा ! जिधर उठ गया, उठ गया। गाँव से दो तीन सौ आदमी करह की ओर चल पड़े। किन्तु बड़े महाराज जी को सब कुछ पहले ही मालूम हो गया। वे चुपचाप उठकर 'नरसिंह–शिला' पर चले गये। नरसिंह शिला करह की खोह से ऊपर लगभग एक मील दक्षिण की ओर 'करखोहा' की तरफ है। वह ऐसा स्थान है जहाँ दिन में भी सिंह बाघ बैठा करते हैं। महाराज जी उन्हीं विकट शिला–खण्डों में जा बैठे। उन्हें भला किसका डर ?

उधर भगत जी अपने दल बल के सहित करह पर पहुँचे, किन्तु महाराज जी गायब थे। अत्यन्त निराश होकर लौट गये। इधर एक और विचित्र बात हुई। लश्कर का एक भगत महाराज जी के दर्शनार्थ

करह की ओर गया। साथ में महाराज जी के लिए प्रसाद लिए हुए था। संयोग की बात है कि वह मार्ग भूल गया। जंगल तो ठहरा ही। लेकिन उसका भूलना सार्थक हो गया। वह मार्ग भूल कर वहाँ पहुँचा जहाँ महाराज जी विराजमान थे वह तो कृतार्थ हो गया। महाराज जी को प्रसाद पबाया। उसकी कामना पूर्ण हो गयी। एक खोजन आये वे न पा सके किन्तु एक भूला हुआ उन्हें पा गया। यह थी उनकी लीला।

तीन दिन तक महाराज जी नरसिंह-शिला पर रहे, तमाम गाँवों में समाचार फैल गया कि बाबा महाराज ने स्थान छोड़ दिया। कई गाँवों के लोग पता लगाकर नरसिंह शिला पर पहुँचे। सबने प्रार्थना की कि वहीं करह पर पधारें। अब कोई भी व्यक्ति आपकी इच्छा के विरुद्ध कहीं ले जाने का आग्रह न करेगा। बड़े महाराज जी तो बड़े दयालु थे। वे पुनः करह स्थान पर लौट आये।

अपराधिहु पर कोह न काऊ

करह की व्यवस्था के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन यथार्थ प्रतीत होता है कि :-

जहाँ तहाँ पियहि विविध मृग नीरा

जनु उदार गृह याचक भीरा,

जिसे कहीं कोई न पूछे वहाँ सानन्द स्थान प्राप्त कर लेता है कोई प्रतिबन्ध नहीं कोई रोक-टोक नहीं, किसी नियम विशेष के पालन का आग्रह नहीं था। यहाँ तक कि भगवान की आरती पूजा में भी सम्मिलित नहीं होते थे। कीर्तन में कभी गये तो गये, नहीं तो मस्त पड़े रहे। न कोई चिन्ता न किसी का भय। साधुओं के सम्बन्ध में विचित्र लोक-प्रवाद तो प्रचलित हैं ही। आज भी कोई माता साधु के सानिध्य में अपने बच्चे को डराती हुई कहती है- ''जल्दी भाग आओ, नहीं तो साधु बाबा

झोली में धर ले जायेंगे।'' वस्तुतः उनका पता तो चलता नहीं कि सन्त हैं कि सन्त वेश में छिपा कोई चोर है। तभी तो लोग कहते हैं– 'घुटी दवा और मुड़ा साधु' इनकी पहचान कठिन है। इसीलिए चालाक आदमी से कहा जाता है– बड़ा घुटा हुआ है। साधु–वेश ऐसा है जिसके प्रति भारतीय जनता में सम्मान है फलतः इस वेश का दुरुपयोग करने वाले क्यों चूकने लगे। तो जहाँ सज्जन इस वेश को वैराग्य का प्रतीक समझ कर ग्रहण करते हैं वहाँ असज्जन इसे अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन समझते है। इसमें सब खप जाते हैं–'ज्यो हाथी के पाव में सबका पाँव समाय' राजकीय गुप्तचरों के लिए भी यह अनुकूल है। भारत–भूमिका बाँका बीर 'नेता' सुभाष भी इसी वेश के बल पर अंगेजों को चकमा देकर भारत से बाहर चले गये थे। कहने का भाव यह है कि यह वेश सिंह का वेश है। पर सिंह की खाल ओढ़कर गधा भी अपना मतलब गाँठ सकता है। और सियार भी। इसमें सिंह–वेश का कोई दोष नहीं। एक इसी प्रकार का साधु करह पर आया। पूछने पर बताया कि वह वृन्दावन से आ रहा है। वह दो चार दिन स्थान पर रहा। वहाँ का रंगढंग देखता रहा और देखता रहा वहाँ की चीजों को। अवश्य ही इस फक्कड़ी स्थान पर से द्रव्य प्राप्ति की आशा तो उसकी पूरी नहीं हुई। हाँ एक दिन आधी रात के समय भण्डारे में घुस गया। वहाँ भी कोई मन चाही चीज न मिली तो उसने एक बोरे में लगभग सात पँसेरी आटा भर लिया और चल पड़ा। पर मालूम होता है कि वह तब तक उस विद्या में कुशल नहीं था। यही कारण है कि वह खाँस बैठा उसे यह नीति नहीं मालूम थी कि– 'चोरहि खोवे खाँसी' आटे का वजन अधिक था। उससे दबकर खाँसी चीख उठी। साधुओं की नींद खुल गयी। उसके साथ ही उस बनावटी साधु की कलई भी खुल गई। पकड़ लिया गया। उसे दण्ड देने का निश्चय किया गया। परन्तु वहाँ

प्रत्येक निश्चय पर पूज्य बड़े महाराज जी की स्वीकृति की मोहर लगनी आवश्यक थी। अतः यह बात उनके पास पहुँची। बड़े महाराज जी मुस्कुरा के बोले–'अरे भैया, साधु वृन्दावन का है, जहाँ का राजा माखन चोर है वहाँ से आकर बेचारे ने आटा चुरा लिया तो कौन अनीति कर दी ? साधुओं ने कहा–नहीं महाराज जी यह साधु नहीं चोर है साधु वेश को बदनाम करने वाला है इसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिए, बड़े महाराज जी ने कहा– भैया दण्ड तो मिल गया। क्योंकि जितना भाग्य है वह तो उसे मिलता ही। चोरी करने पर भी उतना ही मिलता। उससे अधिक तो मिलता नहीं, उससे अधिक कुछ मिला तो चोरी की बदनामी मिली, यही दण्ड उसके लिये बहुत। पूज्य श्री महाराज जी ने यह बात इतनी तर्क संगत कही कि किसी से कुछ उत्तर देते ही नहीं बना। साधु छोड़ दिया गया। वह लज्जित हो गया। सिर झुका के वहाँ से जाने लगा तो बड़े महाराज जी उस पर द्रवीभूत होकर बोले–''अरे सन्त भगवान ! बिना प्रसाद पाये न जाओं। प्रसाद पाके, पंगत करके जाना।'' महाराज जी के इन कृपा पूर्ण वचनोमृतों से उसके हृदय पर क्या प्रभाव हुआ, वह तो वही जाने, परन्तु हमारी अन्तरात्मा कहती है कि उसके हृदय पर वह प्रभाव पड़ा जो कठोर–से–कठोर दण्ड देने पर भी न पड़ता।

राम सदा सेवक रुची राखी

एक बार चोर ठाकुर जी के कपड़े चुरा ले गया। मनीरामदास पुजारी ने बड़े महाराज जी से दुखी होके कहा– 'महाराज जी बड़ा अनर्थ हुआ। चोर श्री ठाकुर जी के सब कपड़े उतार ले गये।' महाराज जी हँसे और बोले–एँरे मनीराम दास ! ले गये तो कोई बात नहीं। अपने राम बनवासी राम हैं। बनवास में राजसी वस्त्र उन्हें नहीं लगे

होंगे। पुजारी जी ने कहा– 'महाराज जी, मैं तो सिंहासनासीन श्रीराम जानकी युगल सरकार का प्रेमी हूँ' तो बोले–'एँरे मनीरामदास' तो कोई बात नहीं, तेरी भावना ऐसी है तो कपड़े आ जायेंगे। सचमुच शाम को सिले हुए नूतन वस्त्र भगवान के लिये आ गये।

इसी तरह की एक घटना और भी हुई भगवान के मंदिर में एक दूसरे पुजारी ने दीपक जलाया। रात में दीपक को जलता छोड़ दिया जाड़े के दिन थे। भगवान को गद्दा बिछा के रजाई उढ़ाके सुला दिया। रात में चूहों के लिए दीपक खिलौना बन गया। उन्होंने जलती हुई बत्ती घसीट ली, और भगवान से ही विनोद करने पहुँचे। चूहों ने सोते हुए भगवान की रजाई पर जलती हुई बत्ती छोड़ दी। वस्त्र जल गये। जब मनीरामदास पुजारी ने यह देखा तो वह बड़ा दुखी हुआ। बड़े महाराज जी से निवेदन किया तो बोले–''भैया रामजी की इच्छा का किसी को क्या पता ? न जाने कब क्या किया करते हैं इसमें तो उन्हीं की इच्छा है'' मनीरामदास को संतोष न हुआ। महाराज जी बोले– ''एँरे मनीरामदास ! अरे भगवान की इच्छा नये कपड़े पहनने की होगी।'' मनीराम दास ने कहा– 'तो नये कहाँ से आ सकते हैं ? आखिर आज रात में तो भगवान को जाड़ा लगेगा ? महाराज जी मुस्कुरा के बोले– ''उनकी इच्छा होगी तो शाम तक उनकी रजाई, उनका गद्दा आ जायेगा।'' शाम को लगभग छह बजे बामौर से सचमुच ही ठाकुर जी के लिए खूबसूरत रेशमी रजाई और गद्दा आ गया।

शेष दर्शन

जिला मुरैना की लीला बड़ी प्रसिद्ध है। उसके सम्बन्ध में एक जन श्रुति है कि कलि में आय करौली न देखी और मुरैना की लीला उसमें दूर–दूर तक के गाँवों का जन समुदाय एकत्र होता है। साधु सन्त भी दर्शनार्थ जाते हैं। यह लीला अन्नकूट उत्सव के पश्चात् होती

है। करह पर एक मस्तराम सन्त आकर बड़े महाराज जी से आग्रह करने लगे–'महाराज जी, आप भी लीला देखने चलिए।' बड़े महाराज जी ने कहा–'भैया हम तो उस लीला के कई बार दर्शन कर चुके हैं फिर मेला ठहरा, वहाँ भीड़–भाड़ के सिवा और क्या होता है ?

मस्तराम बोले–महाराज जी ! वहाँ लीला के दिन तालाब में से शेष निकलते हैं। सब लोग उनके दर्शन करते हैं, वे भगवान् की नाग लीला की याद दिलाकर फिर तालाब मे लुप्त हो जाते हैं। ''मस्तराम यह सब कह ही रहे थे कि इतने ही में पटिया की संधि से सचमुच साँप का बच्चा निकल पड़ा। महाराज जी ने उसे प्रणाम किया और बोले– अरे मस्तराम ! देख शेष भगवान यहीं प्रकट होकर दर्शन दे रहे हैं। तुम भी दर्शन करो। मस्तराम और पुजारी दोनों देखकर सचमुच चकित रह गये। उन्होंने सोचा कि महाराज जी ने मुरैना की लीला की विशेषता यहीं प्रकट कर दी। इस प्रकार की बात आये दिन होती रहती थीं।

लक्ष्मी का शाप

पूज्य श्री बड़े महाराज जी के शरीर में खुजली हो गई थी, वह बढ़ती ही गयी। बड़ा असह्य कोप था उसका। पर एक बात बड़े आश्चर्य की थी। जब तक वे कीर्तन में बैठे रहते या कथा सुनते रहते, खुजली का पता भी नहीं चलता थ। ऐसा लगता था मानों उतनी देर खुजली भी कथा कीर्तन में अपने आपको भूल जाती है। पर जैसे ही लेटते, खुजली का वेग प्रबल हो उठता था। महाराज जी इतना खुजलाते कि शरीर में चकत्ते पड़ जाते थे। तमाम भक्त लोग रबड़ के बने खुरचना से खुजलाया करते। शरीर सूज जाता था। उस खुजली को शान्त करने के लिए पूज्य छोटे महाराज जी ने सब प्रकार की दवाएँ कराईं। अच्छे–से–अच्छे वैद्य–डॉक्टरों को बुलवाकर दिखाया, इलाज का लाभ कुछ भी न हुआ। बड़े महाराज जी ने कहा– 'एँरे रामदास,

चाहे तू कितना ही इलाज करा पर यह खुजली नहीं जा सकती, यह तो लक्ष्मी मैया का शाप है ! इस पर छोटे महाराज जी ने पूछा– लक्ष्मी मैया का शाप कैसा ?' इस पर बड़े महाराज जी ने बताया कि करह पर एक बूढ़ी मैया आई। वह करह पर झाड़ू दिया करती थी। एक समय की बात है। वह झाड़ू लगा रही थी। हम भ्रमण के लिए उधर से निकले। बूढ़ी मैया ने हमें देखा तो झाड़ू रख दी और अंचल के छोर से खोलकर वह चार पैसे हमें देने लगी। हमने मना किया तो अत्यन्त आग्रह पूर्वक कहने लगी– ले लो, कुछ मोल ले के खा, लेना अरे गाँजा ही पी लेना। हमने कहा– मैया, हम गाँजा तो पीते नही। बूढ़ी मैया ने कहा–बड़ा साधु बना है, क्या तूझे किसी चीज की जरूरत नहीं पड़ती ? तू खाता नहीं, कि पहनता नहीं ? मैं कहती हूँ कि ले नहीं तो पछितायेगा। लेकिन हम उसकी बातों पर हँसते रहे। उसके चार पैसों को हमने नहीं लिया। इससे वह बूढ़ी मैया बड़ी क्रुद्ध हुईं और बोलीं– ''जा तेरे कोढ़ हो जाये।'' एँरे रामदास ! उसके बाद सचमुच आश्रम पर न एक पैसा चढ़ता न कोई एक पैसा देता था। और हमारे शरीर में यह खुजली हो गई। इसलिये हम कहते हैं कि हम पर लक्ष्मी मैया अप्रसन्न हैं। उसने हमें पैसे देने चाहे थे, हमने नहीं लिये। इस प्रकार पूज्य बड़े महाराज जी ने यह घटना छोटे महाराज जी को सुनाई थी। उसके पश्चात् बड़ा यज्ञ का आयोजन होने वाला था। उस समय एक अपरिचित साधु आया, वह बड़े महाराज जी से बोला–''लो यह चौवन्नी, इसे अपने तकिया में रख लो'' महाराज जी ने पिछली घटना का स्मरण करते हुए उस चौवन्नी को यह कहके स्वीकार कर लिया कि पहले लक्ष्मी मैया आयीं, उनका हमने अपमान कर दिया था, इस बार नारायण आये हैं इनका दिया हुआ हम स्वीकार कर लेते हैं और सचमुच ही बड़े महाराज जी ने उस चौवन्नी को अपने तकिया में रख लिया उन्होंने सोचा–प्रभु कुछ साधु सेवा कराना चाहते हैं।

महान संकल्प का उदय

संवत् १९९८ की बात है। आषाढ़ बीता, सावन का महीना भी बीता जा रहा था। ठीक से पानी नहीं पड़ा। आसपास की खेती सूख चली और उसके साथ ही किसानों की आशाएँ भी मुरझा गईं इस निराशा की काली रात में आशा की एक किरण चमक रही थी, उन्हें विश्वास था करह वाले बाबा 'का'। पूरा धनेला ग्राम पूज्य परम गुरुदेव की शरण में पहुँचा। पूज्य महाराज जी ने कहा–'भइया, देवता हवन चाहते हैं, पहले समय में हवन होते थे समय पर पानी बरसता था। रामदास से पूछ लो, वह जैसे बतायें करो, भगवान सब कृपा करेंगे' सबने छोटे महाराज जी से प्रार्थना की तो उन्होंने कहा–'सात दिन का अखण्ड कीर्तन करो, हवन करो, रामजी सब कृपा करेंगे' लोगों ने निवेदन किया पशुओं तक को खाने के लिए चारा नहीं है सारा दिन उसी के जुगाड़ में बीत जाता है, कीर्तन किस समय करें ? ढोर भूँखे मरेंगे तो कीर्तन में हमारा मन कैसे लगेगा ? हाँ पहले कुछ पानी बरस जाय तो हम लोग आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हैं, इसके लिए हम सब आपको वचन देते हैं। छोटे महाराज जी ने कहा कि अच्छा फिर जाओ, रामजी महाराज कृपा करेंगे। सब लोगों ने अत्यन्त श्रद्धा और विश्वास से महाराज जी का चरण स्पर्श किया और वे अपने गाँव की ओर चल पड़े। आधे मार्ग में ही आकाश के एक कोने से उठते हुए मेघ खण्ड में आशा की ज्योति–सी बिजली चमकी और जैसे ही वे सब ग्राम के समीप पहुँचे, गड़गड़ाहट के साथ बादलों ने उनका वर्षा से स्वागत किया। उस साल धनेले ग्राम की इतनी अच्छी फसल हुई कि आसपास कहीं नहीं हुई पूज्य श्री बड़े महाराज जी का शुभ संकल्प आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ। आसपास के समस्त ग्रामों के लोगों ने मिलकर सात दिन का अखण्ड कीर्तन किया और यज्ञ का

आयोजन किया। पं. श्री चतुर्भुज जी पाठक के आचार्यत्व में १३७ पंडितों ने विष्णुयाग को सम्पन्न किया। रासलीला का अयोजन हुआ। सत्संग की व्यवस्था की गयी। गाँव वालों ने अत्यन्त उत्साह से सेवा की। उस यज्ञ में जन–श्रद्धा का अपूर्व दर्शन था। करह पर सैकड़ों भण्डारे हुए, कई यज्ञ हुए, परन्तु इस यज्ञ जैसे प्रबन्ध किसी में नहीं हुआ। सवंत् १९९८ की इस यज्ञ में गाँवों से इतना दूध एकत्र हुआ जितना कभी किसी शुभ कार्य में नहीं हुआ। दो–दो सौ ढाई–ढाई–सौ मन दूध नित्य आता और जिन गाँवों का दूध होता उन्हीं गाँवों के लोग, मधुर पदार्थ से सबको प्रसाद खिलाते थे। लोगों के हृदय में श्रद्धा प्रगट हुई और इधर श्री बड़े महाराज जी के मंगलमय मन में एक विशाल यज्ञ करने की प्रभु–प्रेरणा का उदय हुआ। उसकी अभिव्यक्ति भी उनके द्वारा एक विचित्र ढंग से हुई।

महायज्ञ का महासंकल्प

'यज्ञ' शब्द 'यज' धातु से निष्पन्न होता है। 'यज्ञ देवपूजा संगति करण दानेष, पाणिनीय स्मृति के अनुसार यज्ञ धातु का अर्थ है– देवपूजा, संगतिकरण और दान। अर्थात् यज्ञ के आयोजन में देवताओं की पूजा होती है, ऋषि–महर्षियों या विद्वानों, सन्तों एवं अनुभवियों का सत्संग होता है तथा दान दिया जाता है। इसी के अनुकूल मत्स्य पुराण ने यज्ञ का लक्षण किया है–

'देवानां द्रव्यहविषाम् ऋकसामयजूषां तथा
ऋत्विवंजां दक्षिणानांच संयोगो यज्ञ उच्यते'

''जिसमें देवता, हवनीय द्रव्य वेदमंत्र ऋत्विज और दक्षिणा इन पाँचों का संयोग हो उसे 'यज्ञ' कहते हैं।'' इस यज्ञ के दो भेद होते हैं– यज्ञ एवं महायज्ञ। जिसका उद्देश्य केवल अपने तक सीमित हो, जैसे कि पुत्रेष्टि याज्ञादि का होता है तो उसे 'यज्ञ' कहते हैं और जिसका

उद्देश्य अपने तक सीमित न होकर विश्व कल्याण की भावना से सम्बद्ध होता है वह 'महायज्ञ' कहलाता है। इसीलिए महर्षि अंडिग का कथन है–

''यज्ञ महायज्ञों व्यष्टि समष्टि सम्बन्धात्''

व्यष्टि संबंध से 'यज्ञ' और समष्टि संबंध से महायज्ञ कहलाता है। इस तरह महायज्ञ का संबंध विश्वकल्याण से है अतः वह निःस्वार्थ होता है। और वस्तुतः निस्वार्थ यज्ञ ही सात्विक यज्ञ है उसका अनुष्ठान सर्वोत्तम होता है। ऐसे यज्ञों से विश्वकल्याण सम्भव है। सारा सृष्टिचक्र ही यज्ञ द्वारा संचालित होता है–

अन्नाद् भविन्त भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः
यज्ञाद्‌भवानि पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुभ्दवः।

–गीता ३/१४

'समस्त प्राणी यज्ञ से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है तथा वर्षा यज्ञ से होती है एवं वह यज्ञ, कर्म से सम्पन्न होता है।' इसीलिए अथर्व वेद का ऋषि कहता है–

यज्ञो विश्वस्य भुवन स्य नाभिः

–६/१०/१४

''यज्ञ निखिल विश्व की नाभि है– केन्द्र है।'' आज के विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान या राजनीतिक नेता 'पंचशील' की बड़ी चर्चा करते हैं। आस्तिक–नास्तिक सभी उस पर बल देते हैं। किन्तु आचरण उसके विपरीत की करते हैं। इस प्रकार उनकी विश्व–शांति का नारा अपने स्वार्थ प्रदर्शन का साधन मात्र बनके रह जाता है किन्तु ऋषियों की विचार–धारा या लोक मंगल की योजना महायज्ञ में ही निहित है। यज्ञ शब्द की शाब्दिक व्याकृति से यही सिद्ध होता है। उसमें प्रथम दैवी शक्तियों की मान्यता, उन्हें आदर देने की भावना है, द्वितीय, परस्पर विचार–विमर्श का आयोजन है, एक दूसरे के विचारों को

सुनने समझने का सुअवसर है, तृतीय द्रव्य दान, विचार दान या सहयोग दान का संकल्प है। यह परिकल्पना ही विश्व कल्याण का पवित्र सूत्र है।

पूज्य बड़े महाराज जी के हृदय में इसी ऋषि–विचार का प्रादुर्भाव हुआ। वे ऋषि कुल में पढ़े न थे। उन्हीं किसी लौकिक शिक्षा का अक्षर ज्ञान भी नहीं था। वे परम हंस वृत्ति में रह चुके थे–रामनाम के अनन्य जापक थे। वैदिक विधियों की जटिल बातें वे नहीं मानते थे फिर भी ऋषियों की अमर भावना से उनका हृदय भावित था।

मध्यप्रदेश के उस विकट भू–भाग में साक्षरता अल्प है, फिर भी वहाँ कुछ ऐसे वेदज्ञ विद्वान् हैं जिनकी विद्वता सराही जाती है, पर इसके पूर्व उनमें से कोई भी वह आत्म बल या धर्म बल उत्पन्न न कर सका जिससे महायज्ञ–जैसे महान् कार्य के लिए जन–मन को सन्नद्ध कर सकता। वस्तुतः मतिजन्य या मत जन्य ज्ञान से आत्म–प्रेरणा या जनप्रेरणा नहीं मिलती। प्रेरक–शक्ति के केन्द्र तो स्वार्थ निरपेक्ष सन्त ही होते हैं। वीतराग एवं करुणा परायण महान आत्माओं में ही चुम्बकीय आकर्षण–शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। पूज्य परम गुरु देव का करुणा–मृदु मानस ऐसी ही शक्ति का अक्षय भण्डार था। उनके मन में महायज्ञ की प्रबल इच्छा हुई। इस भावना के परिशोधनार्थ उन्होंने अन्न जल का परित्याग कर दिया और इस सम्बन्ध में प्रभु–प्रेरणा का साक्षात्कार करने के लिए एकान्त अन्तर्मुख हो गये। साधुओं में इसकी प्रतिक्रिया दूसरे रूप में हुई। उन्होंने समझा कि पूज्य गुरुदेव अपना भौतिक शरीर छोड़ देना चाहते हैं। इस विचार से बड़ी खलबली फैली। छोटे महाराज जी उस समय ५०–६० मूर्तियों के साथ 'पिछोर' की ओर गये हुए थे। यह घटना संवत् २०००, कार्तिक महीना की है। छोटे महाराज जी के पास गनेशराम भक्त को भेजा गया। उसने सूचना दी कि ''बड़े महाराज जी ने ७ दिन से कुछ ग्रहण नहीं किया है, केवल

श्री ठाकुर जी का प्रातः सायं चरणामृत ग्रहण करते हैं। समस्त भक्त जन दुःखी हैं, आप शीघ्र चलें।' यह समाचार सुनते ही छोटे महाराज जी तत्काल वहां से चल पड़े। लश्कर आये। वहां से छोटी लाइन के द्वारा बानमोर होते हुए आश्रम पहुँचे। पूज्य महाराज जी कोठे के अन्दर भीतर से साँकल बन्द करके भगवत् चिंतन कर रहे थे। छोटे महाराज जी उसी कोठे के द्वार पर जा बैठे। सारे दिन बैठे रहे, रात हो गई किन्तु बड़े महाराज जी कोठे से बाहर न निकले। रात के लगभग तीन बजे होंगे कि महाराज जी अन्दर से निकले। छोटे महाराज जी विहल होकर चरणों पर गिर पड़े। बड़े महाराज जी ने उनके मस्तक पर वरदहस्त रखा। लघुशंका करने गये। लौटकर कुल्ला किया। छोटे महाराज जी के नेत्रों से आँसू झर रहे थे। बड़े महाराज जी मौन थे पर उन्होंने कुछ संकेत किया, पर उसका अभिप्राय ज्ञात न हो सका तो छोटे महाराज जी ने प्रार्थना की कि आपका आशय हम नहीं समझ पाये। सब भक्त दुखी हैं, क्योंकि समझते हैं कि आप शरीर त्यागना चाहते हैं। आप क्या लीला कर रहे हैं, हमारी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है, सब लोग हमारे पीछे पड़े हैं, वे जानना चाहते हैं कि महाराज जी की इच्छा क्या है ? आप स्पष्ट बोलकर हमें आज्ञा प्रदान करें पश्चात् फिर भले ही मौन धारण कर लें। छोटे महाराज जी की प्रार्थना सुनकर सर्वप्रथम मुख से सीताराम–नाम का उच्चारण किया, उसके पश्चात् छोटे महाराज जी से बातचीत की। उन्होंने बताया कि हम शरीर नहीं छोड़ रहे हैं। और कहा ''मुझे 'सकीर्तन–भवन' में मुस्कुराते हुए श्री राम–लला के दर्शन हुए हैं। उनकी आज्ञा है कि तुम चार महीने तक स्थान पर ही रहो। दोनों महात्माओं– (पूज्य श्री उड़िया बाबा और पूज्य श्री हरि बाबा) को बुलवाओं और देवताओं की तुष्टि के हेतु हवन कराओ। श्रीराम–लला इतना आदेश देकर अन्तर्हित हो गये हैं। उसी समय से अन्न जल ग्रहण न करने की प्रेरणा

हुई है'' यह सब सुनकर छोटे महाराज जी ने प्रार्थना की कि यदि आप कुछ प्रसाद ग्रहण करने लगें तो हम आपकी आज्ञा के अनुसार आज से ही कार्य करना शुरू कर दें। महाराज जी भी फलाहार लेने लगे। अगहन कृष्ण अमावस्या से यह व्रत आरंभ किया गया। छोटे महाराज जी ने १३२ ग्रामों के भक्तों को स्थान पर एकत्र किया और चार महीने का अखण्ड कीर्तन प्रारंभ किया गया यह कीर्तन ''कीर्तन–भवन' मे होने लगा। कीर्तन के साथ क्रम से एक–एक महीने के लिए स्थानीय वट वृक्ष की सघनच्छाया में वाल्मींकीय रामायण की कथा, तुलसीकृत रामचरित मानस की कथा, श्री देवी भागवत की कथा और श्री आनन्द रामायण की कथा का आयोजन किया गया। इस प्रकार चार महीने तक कथा–कीर्तन का अजस्त्र प्रवाह बहता रहा। इसके साथ ही आधे लोग कीर्तन करते, आधे लोग सेवा कार्य करते। फलतः उन चार महीनों के अन्तर्गत ही चार मील लम्बी कच्ची सड़के निर्मित हुइ। प्रस्तर खण्डों को एकत्र कराके सैकड़ों चबूतरे बनवायें गये।

बसन्त के आरंभ में चैत्र कृष्ण पक्ष में सैकड़ों तम्बू छोलदारी, शामियाने तन गये। सैकड़ों पर्ण कुटीरें निर्मित हो गईं। 'करह' का वन प्रदेश सन्तों, गृहस्थ भक्तों एवं सेवकों से भर गया। पूज्य श्री उड़िया बाबा जी महाराज, पूज्य श्री हरीबाबा जी महाराज, श्री अखण्डानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी कृष्णानन्दजी, श्री वेदाँत केसरी, श्री रघुवराचार्य जी (सींगड़मठ) श्री रामानुजदासजी, श्री रघुनाथदास जी, मुरैना के श्री तपसी जी महाराज आदि सन्तों के पदार्पण से भूमि धन्य हो गयी। दुर्लभ–दर्शन पाकर लोगों ने भाग सराहे। विविध स्थानों से वेदज्ञ, दार्शनिक, पौराणिक उपदेशक एवं याज्ञिक विद्वान् पधारे। चैत्र शुक्ल प्रतिपद से दशमी तक के लिये अभूत पूर्व एवं भव्य समारोह का शुभारंभ किया गया। एक ओर ४७६ कर्मकाण्ड–कुशल वेदज्ञ ब्राह्मणों ने विष्णुयाग का समारम्भ किया।

वेदमंत्रों के पवित्र उद्घोष से समस्त वनस्थली मुखरित हो उठी। श्रद्धा सम्पन्न पुरुषों का समुदाय यज्ञ मण्डप की परिक्रमा करता और सहस्त्रः दर्शक इस अपूर्व दृश्य से गद्गद !हो उठते। दूसरी ओर रामलीला एवं रासलीला का आयोजन था। इसके अतिरिक्तआगत विद्वानों के प्रवचन होते, कथा होती तथा ललित कीर्तन की मधुर ध्वनि होती। मुजफ्फरपुर (बिहार) से बाबू श्री रामेश्वरसिंह पधारे। उनके साथ श्री लीला–स्वरूप थे। उन्हें अलंकृत करके सुन्दर सिंहासन पर बिठाते और उनके सम्मुख–भाव–विभोर होकर वे मिथिला भाषा के ऐसे ललित पद सुनाते कि जन समूह भाव–गंगा में ऊब डूब होने लगता था। सारा दिन कब बीत गया, इसका पता ही न लगता था। अपार जन समूह उमड़ पड़ा था। फिर भी किसी को कोई कष्ट नहीं था। बड़ी सावधानी से सबकी व्यवस्था की गयी थी। इस पुण्य कार्य में कर्नल श्री शिवनाथ मिश्र अपने दो सौ फौजी जवानों के साथ दिन रात सेवा कार्य में संलग्न रहे। मुरैना, जौरा, लश्कर, मुरार, धौलपुर तथा आगरा से १२०० स्वयं सेवक पहुँचे। १० दिन तक लगातार लगन से सेवा कार्य में अथक परिश्रम किया। सबसे कठिन कार्य था सबकी भोजन व्यवस्था का। यह कार्य पंडित गोकुलप्रसाद सेक्रेटरी सेठ तोताराम, चतुर्भुज हलवाई आदि सज्जनों को सौंपा गया। इन सभी ने भोजनालय की बड़ी अच्छी व्यवस्था की। उँटगिरि वाले नारायणदास ने कोठार–भण्डार का काम सँभाला और खेरागढ़ के पंडित नारायण ने सन्तों की सेवा में जल पहुँचाने की सेवा बड़ी सावधानी से की। जनसम्मर्द इतना अधिक था कि वहाँ के छोटे–छोटे झरने उन्हें पानी पिलाने में असमर्थ थे पर इसकी पूर्ति लगभग वहाँ डेढ़ मील की दूरी पर बहती हुई नदी से की गई। इस कार्य के लिए आगरा के रामबाबू सेठ ने जल लाने के लिये अपना ट्रक दिया। इंजन दिया, जिनके द्वारा नदी से पानी भरा जाता था। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने बहुत सेवा की। लश्कर–म्युनिस्पल बोर्ड ने जल के लिये दो ट्रक दिए जिनसे १० दिन तक

जल लाने में बड़ी सुविधा रही। इस प्रकार विष्णुयाग की यमुना, भजन कीर्तनों की गंगा और प्रवचनों की सरस्वती ने मिलकर करह की वनस्थली में तीर्थराज प्रयाग की त्रिवेणी का दृश्य उपस्थित कर दिया। १० दिन तक इसके पावन पर्व में कोटि–कोटि जनता ने स्नान किया। समारोह की समाप्ति के दिन–आसपास के डेढ़ लाख व्यक्तियों ने भोजन किया। ऐसा अद्‌भुत भोज इसके लिये भी यह दृश्य बिलकुल नया था। सामान्य जनता तो श्रद्धा से अभिभूत थी। उसकी दृष्टि में तो स्पष्ट ही यह सब पूज्य बड़े महाराज जी की महिमा का ही चमत्कार था और वास्तव में बात ऐसी थी।

इसी समारोह में 'करह' पर श्री विजय राघव सरकार की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी। अनेक शुभारम्भों का शुभ संकल्प किया गया। कई भक्तों ने दिन रात अनवरत लगकर तन–मन–धन से सेवा की। यज्ञ में लगभग ढाई लाख रुपया खर्च हुआ। यज्ञ में जो कुछ चढ़ावा चढ़ा उसे सन्तों की विदाई में, ब्राह्मणों की दक्षिणा में दे दिया। निर्धन कन्या के विवाह में लगाया, अन्य दीन–हीनों को दे दिया। जो कुछ शेष बचा उसे मंदिरों के निर्माण में लगा दिया। उनके पास न दाम था न एक दाम बचाके रखा। विलक्षण थे, एक ही थे।

कवित्त–

केश बिन कटा देखे, योगी कन फटा देखे,
सीस भारी, जटा देखे छार लाये तन में।
मौनी अनवोल देखे, जैनी सिर छोल देखे,
करते कलोल देखे वन खण्डी बन में।
गुणी अरु कूर देखे कायर अरु शूर देखे,
माया के अपूर देखे पूरि रहें धन में।
आदि अन्त सुखी देखे जन्म के दुखी देखे,
ऐसे नाहि देखे जिन्हें लोभ नाहिं मन में।

जगज्जननी नृत्य कर उठी

उत्सव के मध्य चैत्र शुक्ल पंचमी की बात है। भगवान की आरती हुई। स्तुति हुई। जैसे ही कीर्तन आरंभ हुआ कि आरती में खड़ी सहस्त्रों माताएं नृत्य कर उठीं। पूज्य बड़े महाराज जी अपने आसन 'पटिया' पर विराजमान थे। उन्होंने जब इस दृश्य को देखा तो उनका हृदय एक अपूर्व श्रद्धा से, अद्‌भुत भाव से भर गया। उन्हें लगा कि नृत्य करती हुई माताएं साधारण स्त्रियां नहीं हैं। इनमें जगज्जननी भगवती का भावावेश है। आनन्दातिरेक से नर्तन करने वाली उन माताओं के मध्य में एक दिव्य कन्या नृत्य कर रही थी। लगता था कि सभी माताएँ एक उसी की प्रेरणा से थिरक रही हैं। दो घण्टे तक यही उल्लास रहा। पूज्य बड़े महाराज़ जी दो घण्टे तक एक विचित्र आनन्द में डूबे हुए मौन रहे। उनकी दृष्टि में तो यह सब भगवती महामाया का ही खेल था।

माता ने सपना दिया

उत्सव समाप्त हो गया सन्तों की विदा हो गयी। तदनन्तर पूज्य श्री बड़े महाराज जी ने श्री छोटे महाराज जी से कहा–गाँव के भक्तों ने बड़ी सेवा की है, बड़ा श्रम किया है और उन्होंने भण्डारे में प्रसाद ग्रहण नहीं किया है। अतः प्रसाद अलग से खिलाया जाये। उनकी आज्ञानुसार श्री छोटे महाराज जी ने चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण गाँव वालों को आमंत्रित किया सबको प्रसाद पवाया। इस तरह यह दुबारा भण्डारा किया गया, जिसमें ४०–५० हजार की संख्या में जनता एकत्र हुई। ऐसे बीत गया जैसे कोई स्वर्गीय सुनहला स्वप्न शीघ्र समाप्त हो जाता है, पर उसकी स्मृति तो अमर हो गयी। उस यज्ञ का यशोगान विविध लोक गीतों में आज भी गाया जाता है। जन–जन

के मन में विविध भाव बीज बिखर गये। महीनों तक लोगों को उस यज्ञ के सपने आते रहे। इधर कई साधुओं से भगवती देवी का स्वप्न हुआ। करौली वाली भगवती दुर्गा ने कई भक्तों को स्वप्न में आज्ञा दी और वह आज्ञा प्रायः एक–सी थी। वह आज्ञा ऐसी थी कि ''मैं 'करह' पर आ गई हूँ, मेरा मंदिर बनवाओं, पूजा करो।'' छड़ेह नामक ग्राम के एक ब्राह्मण को, एवं जौरा से सेठ श्यामलाल को भी भगवती ने प्रायः ऐसा ही स्वप्न दिया। सबने आ–आकर पूज्य बड़े महाराज जी से स्वप्न का सन्देश सुनाया। बड़े महाराज जी ने एक ईंट में सिन्दूर लगा के रख दिया और लोगों ने उसे भगवती का प्रतीक समझ कर उसकी पूजा की। उन्हें 'यज्ञेश्वरी' के नाम से पुकारा गया। पूज्य श्री छोटे महाराज उस समय 'अमरनाथ' गये हुए थे। वे जब स्थान पर लौटकर आये और उन्होंने सिन्दूर लिप्त ईंट को भगवती के रूप में पूजते देखा तो बड़े महाराज जी से प्रार्थना की कि 'इस रूप से लोगों के मन में भगवती की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती है ? और कैसे लोगों का विश्वास दृढ़ रहेगा ?' महाराज जी ने कहा–'एँरे रामदास। मैया की आज्ञा तो भवन बनवाने की है, यदि हो सके तो बनवाओ' छोटे महाराज जी ने पूज्य गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और कार्य में जुट गये। ढाई महीने में महीने में भगवती का भव्य भवन बनकर खड़ा हो गया। फिर छोटे महाराज जी जयपुर गये। वहां अष्ट भुजी माता की मूर्ति निर्मित करायी। जब पूज्य श्री छोटे महाराज जी माता की मूर्ति को लेकर करह पर आये तो बड़े महाराज जी मूर्ति के स्वागतार्थ सन्त समाज के साथ आश्रम से आधा मील पहले ही पैदल चलकर पहुँचे। साथ में शंख–झालर की पवित्र ध्वनि होती गयी। छोटे महाराज जी ने पूज्य गुरुदेव के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की। मानों यह बताया कि मेरी सारी सफलता का रहस्य आपकी ही चरण–रेणु में छिपा है। पूज्य श्री बड़े महाराज जी ने अत्यन्त गद्–गद् भाव से अपने सपूत